हमारी मांग

दूसरी गोलमेज परिषद् में दिये गये महात्मा गांधी के
महत्वपूर्ण भाषण

●

सम्पादक
चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य
जे० सी० कुमारप्पा

●

१९५५
सत्साहित्य प्रकाशन

प्रकाशक
मार्त्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद की सहमति से

तीसरी बार : १९५५

मूल्य
सवा रुपया

मुद्रक
एडवांस प्रेस,
नई दिल्ली

प्रकाशकीय

पाठक जानते है कि गांधीजी दूसरी गोलमेज़ में शामिल होने लंदन गये थे और परिषद के सामने उन्होंने बड़े जोरदार शब्दों में हमारे देश की मांग उपस्थित की थी। उसी अवसर पर दिये गए गांधीजी के भाषण इस पुस्तक में प्रकाशित किये गए है। बात पुरानी हो गई है; पर वह इतिहास की एक ऐसी घटना है, जिसे कोई भी राष्ट्र-प्रेमी भूल नहीं सकता। यद्यपि तबसे स्थिति बदल गई है, तथापि उन घटनाओं के प्रकाश में वर्त्तमान को देखने से लाभ ही होगा।

वैसे गांधीजी गोलमेज़-परिषद् के निमित्त गये थे; लेकिन उनका काम परिषद् तक ही सीमित नहीं रहा था। उन्होंने भारत के संदेश को व्यापक रूप से फैलाने का प्रयत्न किया और इसमें उन्हें अपेक्षाकृत अधिक सफलता मिली। उसका विस्तृत विवरण 'इंग्लैण्ड में गांधीजी' नामक पुस्तक में हमने प्रकाशित किया है।

प्रस्तुत पुस्तक का यह तीसरा संस्करण है। दूसरा संस्करण 'राष्ट्र-वाणी' के नाम से प्रकाशित हुआ। इस संस्करण में उसका नाम पुनः 'हमारी मांग' कर दिया गया है।

आशा है, पाठक इस तथा इसकी पूरक 'इंग्लैण्ड में गांधीजी' पुस्तक को ध्यान से पढ़ेंगे और स्थायी साहित्य के रूप में सुरक्षित रखेंगे।

इसका अनुवाद श्री शंकरलाल वर्मा ने किया है जिसके लिए हम उनके बहुत आभारी है।

—मंत्री

विषय सूची

हमारी मांग

: १ :

राष्ट्रीय मांग

आरम्भ में ही मुझे यह बात स्वीकार करनी चाहिए कि आपके सामने महासभा की स्थिति रखने मे मुझे जरा भी दुविधा नहीं है। मै आपको यह बतला देना चाहता हू कि इस उप-समिति मे और यथासमय गोलमेज-परिषद् में सम्मिलित होने के लिए मै सर्वथा सहयोग के भाव लेकर और अपनी शक्ति भर समझौते का उपाय करने के उद्देश्य से ही लन्दन आया हू। साथ ही मै सम्राट् की सरकार को यह विश्वास दिला देना चाहता हूं कि किसी भी अवस्था मे अधिकारियों को कठिनाई मे डालने की मेरी इच्छा न है, न आगे होगी। और यही विश्वास मै यहा के अपने साथियों को दिला देना चाहता हूं कि हमारे दृष्टिकोण में कितना ही अन्तर हो, मै किसी भी प्रकार या रूप मे उनके मार्ग में रुकावट न डालूगा। इसलिए मेरी स्थिति यहाँ पर सर्वथा आपकी और सम्राट् की सरकार की सद्भावना पर निर्भर करती है। किसी भी समय यदि मुझे यह मालूम हुआ कि इस परिषद् मे मेरी कुछ उपयोगिता नही है तो इससे अलग हो जाने मे मुझे जरा भी हिचकिचाहट न होगी। इस उप-समिति और परिषद् के प्रबन्धकों से भी मै यही कहना चाहता हूं कि उनके केवल सकेतमात्र से मै अलग हो जाने मे जरा भी न हिचकिचाऊँगा।

ये बाते इसलिए कहनी पडती हैं कि मै जानता हूं कि सरकार और महासभा के बीच मौलिक मतभेद है—और सम्भव है कि मेरे साथियो

और मुझमें भी महत्त्वपूर्ण मतभेद हो—और मैं एक मर्यादा से बंधा हुआ हूं, जिसके अन्तर्गत मुझे काम करना होगा। मैं तो भारतीय राष्ट्रीय महासभा का एक गरीब और विनम्र प्रतिनिधि मात्र हूं। इसलिए हमारे लिए यह बता देना अच्छा होगा कि महासभा क्या है और उसका उद्देश्य क्या है। तब आप मेरे साथ सहानुभूति करेंगे, क्योंकि मैं जानता हूं कि मेरे कन्धों पर ज़िम्मेवारी का जो बोझ है वह बहुत भारी है।

यदि मैं गलती नही करता हूं, तो महासभा भारतवर्ष की सबसे बड़ी संस्था है। उसकी अवस्था लगभग ५० वर्ष की है और इस अर्से में वह बिना किसी रुकावट के बराबर अपने वार्षिक अधिवेशन करती रही है। सच्चे अर्थों मे वह राष्ट्रीय है। वह किसी खास जाति, वर्ग या किसी विशेष हित की प्रतिनिधि नही है। वह सर्वभारतीय हितों और सब वर्गो की प्रतिनिधि होने का दावा करती है। मेरे लिए यह बताना सबसे बड़ी खुशी की बात है कि उसकी उपज आरम्भ मे एक अंग्रेज़ मस्तिष्क में हुई। एलन ओक्टेवियस ह्यूम को काँग्रेस के पिता की तरह हम जानते हैं। दो महान पारसियों—फ़ीरोज़शाह मेहता और दादाभाई नौरोजी ने, जिन्हें सारा भारत 'वृद्ध पितामह' कहने में प्रसन्नता अनुभव करता है, इसका पोषण किया। अपने आरम्भ से ही महासभा में मुसलमान, ईसाई, एंग्लो-इंडियन आदि शामिल थे या मुझे यों कहना चाहिए, इसमें सब धर्म, सम्प्रदाय और हितों का थोड़ी-बहुत पूर्णता के साथ प्रतिनिधित्व होता था। स्वर्गीय बदरुद्दीन तैयबजी ने अपने आपको महासभा के साथ मिला दिया था। मुसलमान और निस्सन्देह पारसी भी महासभा के सभापति रहे हैं। मैं इस समय कम-से-कम एक भारतीय ईसाई श्री डबल्यू० सी० बनर्जी का नाम भी ले सकता हूं। विशुद्ध भारतीय श्री कालीचरण बनर्जी ने, जिनके परिचय का मुझे सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ, अपने को महासभा के साथ मिला दिया था। मैं और निस्सन्देह आप भी अपने बीच श्री के० टी० पाल का

अभाव अनुभव कर रहे होंगे। यद्यपि मैं नहीं जानता लेकिन, जहाँ तक मुझे मालूम है, वे अधिकारी रूप से कभी महासभा मे शामिल नहीं हुए, फिर भी वे पूरे राष्ट्रवादी थे।

जैसा कि आप जानते हैं, स्वर्गीय मौ. मुहम्मदअली, जिनकी उपस्थिति का भी आज यहां अभाव है, महासभा के सभापति थे, और इस समय महासभा की कार्यसमिति के १५ सदस्यों में ४ सदस्य मुसलमान हैं। स्त्रियाँ भी हमारी महासभा की अध्यक्षा रह चुकी हैं—पहली श्री एनी बेसेण्ट थी और दूसरी श्रीमती सरोजिनी नायडू। श्रीमती नायडू कार्य-समिति की सदस्या भी हैं। इस प्रकार यदि हमारे यहां जाति और धम का भेदभाव नहीं है तो किसी प्रकार का लिगभेद भी नही है।

महासभा ने अपने आरम्भ से ही कथित 'अछूतों' के नाम को अपने हाथ मे ले रक्खा है। एक समय था जबकि महासभा अपने प्रत्येक वार्षिक अधिवेशन केस मय अपनी सहयोगी संस्था की तरह सामाजिक परिषद् का भी अधिवेशन किया करती थी, जिसके काम को स्वर्गीय रानडे ने अपने अनेक कामों मे का एक बना कर उसे अपनी शक्तियां समर्पित की थी। आप देखेंगे कि उनके नेतृत्व में सामाजिक परिषद् के कार्यक्रम में अछूतों के सुधार के कार्य को एक खास स्थान दिया गया था; किन्तु सन् १९२० मे महासभा ने एक बडा क़दम बढ़ाया और अस्पृश्यता-निवारण के प्रश्न को राजनैतिक मंच का एक आधार-स्तम्भ मानकर राजनैतिक कार्यक्रम का एक महत्त्वपूर्ण अंग बना दिया। जिस प्रकार महासभा हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य और इस प्रकार सब जातियों के परस्पर ऐक्य को स्व-राज्य-प्राप्ति के लिए अनिवार्य समझती थी, उसी तरह पूर्ण स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए छुआछूत के पाप को दूर करना भी वह अनिवार्य समझने लगी।

सन् १९२० में सभा ने जो स्थिति ग्रहण की थी, वही आज भी बनी हुई है और इसलिए आप देखेंगे कि महासभा ने अपने आरम्भ से ही अपने-आपको सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय सिद्ध करने का प्रयत्न किया है।

यदि महाराजागण मुझे आज्ञा देंगे तो मैं यह बतलाना चाहता हूं कि आरम्भ मे ही महासभा ने आपकी भी सेवा की है। मैं इस समिति को याद दिलाता हूं कि वह व्यक्ति भारत का वृद्ध पितामह ही था, जिसने कश्मीर और मैसूर के प्रश्न को हाथ मे लेकर सफलता को पहुंचाया था और मैं अत्यन्त नम्रतापूर्वक कहना चाहता हूं कि ये दोनों बड़े घराने श्री दादाभाई नौरोजी के प्रयत्नों के लिए कम ऋणी नहीं हैं। अबतक भी उनके घरेलू और आन्तरिक मामलों मे हस्तक्षप न करके महासभा उनकी सेवा का प्रयत्न करती रही है।

मैं आशा करता हूँ कि इस सक्षिप्त परिचय से, जिसका दिया जाना मैंने आवश्यक समझा, समिति और जो महासभा के दावे मे दिलचस्पी रखते हैं वे जान सकेंगे कि उसने जो दावा किया है, वह उसके उपयुक्त है। मैं जानता हूं कि कभी-कभी वह अपने इस दावे को कायम रखने मे असफल भी हुई है; किन्तु मै यह कहने का साहस करता हूँ कि यदि आप महासभा का इतिहास देखेंगे तो आपको मालूम होगा कि असफल होने की अपेक्षा वह सफल ही अधिक हुई है और प्रगति के साथ सफल हुई है। सबसे अधिक, महासभा मूल रूप मे, अपने देश के एक कोने से दूसरे कोने तक ७,००,००० गावों में बिखरे हुए करोड़ों मूक, अर्द्धनग्न और भूखे प्राणियों की प्रतिनिधि है; यह बात गौण है कि ये लोग ब्रिटिश भारत के नाम से पुकारे जानेवाले प्रदेश के हैं अथवा भारतीय भारत अर्थात् देशी राज्यों के। इसलिए महासभा के मत से, प्रत्येक हित जो रक्षा के योग्य है, इन लाखों मूक प्राणियों के हित का साधक होना चाहिए। आप समय-समय पर विभिन्न हितों में प्रत्यक्ष विरोध देखते हैं; परन्तु, यदि वस्तुतः कोई वास्तविक विरोध हो तो, मै महासभा की ओर से बिना किसी संकोच के यह बता देना चाहता हूँ कि इन लाखों मूक प्राणियों के हित के लिए महासभा प्रत्येक हित का बलिदान कर देगी; क्योंकि वह आवश्यक रूप से किसानों की संस्था है और वह अधिकाधिक उनकी बनती जा रही है। आपको, और कदाचित् इस समिति के भारतीय

सदस्यों को भी, यह जानकर आश्चर्य होगा कि महासभा ने आज 'अखिल-भारतीय चर्खा-संघ' नामक अपनी संस्था द्वारा क़रीब दो हज़ार गांवोंकी लगभग ५० हज़ार स्त्रियों* को रोजगार में लगा रखा है, और इन स्त्रियों में सम्भवतः ५० प्रतिशत मुसलमान स्त्रियां हैं। उनमें हजारों अछूत कहाने वाली जातियों की भी महिलाएं हैं। इस तरह हम इस रचनात्मक कार्य के रूप में इन गांवों में प्रवेश कर चुके हैं और ७,००,००० गांवों में, प्रत्येक गांव में, प्रवेश करने का प्रयत्न किया जा रहा है। यह काम मनुष्य की शक्ति के बाहर का है; किन्तु मनुष्य के प्रयत्न से ही हो सकता है। इस प्रकार आप महासभा को इन सब गावों में फैली हुई और उन्हें चर्खे का सन्देश सुनाती हुई देखेगे।

महासभा का यह प्रतिनिधि-रूप होने से, जब मैं आपको उसका आदेश पढ़कर सुनाऊंगा तो आपको उससे आश्चर्य न होगा। मैं आशा करता हूं कि वह आपको विसगत एवं अप्रिय प्रतीत न होगा। आप भले ही ऐसा समझें कि महासभा जो दावा कर रही है वह सर्वथा असमर्थनीय है। जैसा भी कुछ है, मै उसकी ओर से नम्र तरीके पर, किन्तु पूरी-पूरी दृढ़ता के साथ उस दावे को यहां पेश करूँगा। मैं अपने पूरे विश्वास और शक्ति के साथ उस दावे को पेश करने के लिए यहां आया हूं। यदि आप मुझे इसके विपरीत समझा सकेंगे और यह बता सकेंगे कि यह दावा इन लाखों मूक मनुष्यों के प्रतिकूल है तो मैं अपनी सम्मति पर पुनर्विचार करूँगा। मै अपने विचारों में संशोधन करने को तैयार हूं; किन्तु महासभा के प्रतिनिधि की हैसियत से उपयोगी हो सकने के लिए यह आवश्यक है कि इस संशोधन के पूर्व मै अपने मुखियाओं—महासभा के नेताओं—से इस सम्बन्ध में परामर्श कर लू। अब यहां पर मै महासभा का वह आदेश आपको पढ़कर सुनाना चाहता

---

*चर्खा-संघ के ताजे आंकड़ों से मालूम होता है कि अब यह संख्या १,८०,००० ।

हूं, जिससे कि आप मुझपर लगाई गई मर्यादाओं को अच्छी तरह समझ सकें। कराची-महासभा ने यह प्रस्ताव पास किया था—

"यह महासभा अपनी कार्यसमिति और भारत सरकार में हुए अस्थाई समझौते पर विचार कर, उसे स्वीकार करती है और यह स्पष्ट कर देना चाहती है कि महासभा का पूर्ण स्वराज्य का ध्येय, जिसका अर्थ पूर्ण स्वतंत्रता है, ज्यों–का–त्यों कायम है। यदि ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधियों की किसी परिषद में महासभा के सम्मिलित होने का द्वार खुला रहे तो महासभा का प्रतिनिधि उक्त ध्येय की प्राप्ति का प्रयत्न करेगा, और खासकर सेना, अन्तर्राष्ट्रीय मामले, अर्थ-विभाग, राजस्व और आर्थिक नीति पर देश का पूर्ण अधिकार हो, और ब्रिटिश सरकार और भारत के बीच आर्थिक लेन-देन के सम्बन्ध में जांच-पड़ताल करने और भारत अथवा इंग्लैंड द्वारा उठाई जाने वाली क़र्ज़ की ज़िम्मेवारी का निश्चय एक निष्पक्ष अदालत द्वारा करवाने और दोनो पक्षों में से किसी की भी इच्छा होने पर साझेदारी तोड़ देने का अधिकार रहे, इसका प्रयत्न करेगा। लेकिन महासभा के प्रतिनिधि को यह स्वतन्त्रता रहेगी कि वह ऐसे समझौते को स्वीकार कर ले, जो साफ तौर पर भारत के हित के लिए आवश्यक हो।"

इस प्रस्ताव के अनुसार प्रतिनिधि का निर्वाचन हुआ। इस आदेश को ध्यान मे रखते हुए मैंने गोलमेज़-परिषद् द्वारा नियुक्त उपसमितियों के अस्थाई निर्णयों का यथासाध्य ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है। साथ ही मैंने प्रधानमंत्री के उस वक्तव्य का भी ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है, जिसमें उन्होंने सम्राट्-सरकार की नीति बतलाई है। मेरे कथन में कुछ भूल हो तो वह दुरुस्त की जा सकती हैं; लेकिन जहां तक मैं समझ सकता हूं, महासभा का जो उद्देश्य और दावा है उससे यह वक्तव्य कहीं पीछे है। यह ठीक है कि मुझे ऐसे सुधार स्वीकार कर लेनें की स्वतन्त्रता है, जो साफ तौर पर भारत के हित में हों; लेकिन वे सब उक्त आदेश में वर्णित मूल विषय के अनुकूल होने चाहिएं।

यहां मैं दिल्ली में भारत सरकार और महासभा में हुए उस समझौते की शर्तों का ख़याल करता हूं जो कि मेरे लिए एक पवित्र समझौता है। उस समझौते में महासभा ने संघशासन का सिद्धान्त स्वीकार कर लिया है, जिसका अर्थ यह है कि केन्द्रीय शासन में उत्तरदायित्व हो और साथ ही यह सिद्धान्त भी मान लिया है कि यदि भारत के हित से सम्बन्ध रखने वाले कुछ संरक्षण हों तो वे स्वीकार कर लिये जायं।

कल किसी सज्जन ने एक वाक्य कहा था। मैं उनका नाम तो भूल गया; किन्तु उस वाक्य का मुझपर गहरा असर पड़ा। उन्होंने कहा "हम केवल राजनैतिक विधान नही चाहते।" मैं नहीं जानता कि इस वाक्य से उनका भी वह अभिप्राय था, जो तुरन्त ही मेरे मन में उठा; किन्तु मैंने तुरन्त ही दिल में कहा, इस वाक्य ने मुझे अच्छा विचार दिया है। यह सच है कि किसी भी ऐसे सर्वथा राजनैतिक विधान से, जिसके पढ़ने से तो यह मालूम हो कि भारत की जो कुछ राजनैतिक आकांक्षाएं थी, वे इससे मिल गईं, किन्तु वास्तव मे उसमे मिलता कुछ न हो तो न तो महासभा ही, न व्यक्तिगत रूप से मे ही उससे सन्तुष्ट हो सकता हूं। यदि हम पूर्ण स्वतन्त्रता के लिए तुले हुए हैं तो इसका कारण किसी प्रकार की अहम्मन्यता नही है, न इसका यही कारण है कि हम चाहते हैं कि ससार के सामने यह ढिंढोरा पीटते फिरें कि हमने अंग्रेज जनता से अब अपना सब सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया है। ऐसी कोई बात नहीं है। उसके विपरीत स्वयं महासभा के इस आदेश में आप देखेंगे कि वह एक साझेदारी की कल्पना करती है, वह ब्रिटिश जनता से बराबरी के सम्बन्ध की कल्पना करती है; किन्तु वह सम्बन्ध ऐसा होना चाहिए, जो दो बिलकुल समान राष्ट्रों मे होता है। एक समय था, जब मै अपने को ब्रिटिश प्रजा समझने और कहलाने में गौरव समझता था; पर अब तो कई वर्षों से मैंने अपने को ब्रिटिश-प्रजा कहना छोड़ दिया है। मैं तो अब अपने को ब्रिटिश-प्रजा कहलाने की अपेक्षा बाग़ी कहलाना अच्छा समझता हूं। पर एक अकांक्षा मेरे मन में रही है, अब भी है कि मैं

ब्रिटिश साम्राज्य का नही, बल्कि ब्रिटिश राष्ट्रसंघ का, यदि सभव हो तो, एक साझेदारी मे और ईश्वर ने चाहा तो अविभाज्य साझेदारी में, नागरिक बनूं। किन्तु ऐसी साझेदारी में हर्गिज नही, जो एक राष्ट्र ने दूसरे राष्ट्र पर जबर्दस्ती लादी हो। इसलिए आप देखेगे कि महासभा ने यह दावा किया है कि दोनों पक्षों को यह सम्बन्ध-विच्छेद करने, साझेदारी तोड़ देने का अधिकार रहे। इसलिए वह साझेदारी आवश्यक रूप से दोनों के लिए हितकारक होनी चाहिए। यद्यपि विचारणीय विषय से यह असगत होगा; किन्तु मेरे लिए असंगत नहीं। यदि मैं यह कहूं, जैसा कि मैंने अन्यत्र भी कहा है कि मैं आज जिम्मेदार अंग्रेज-राजनीतिज्ञों के, अपनी आमदनी के अन्दर खर्च चला लेने के, घरेलू मामलों में पूर्ण रूप से फसे रहने की बात को अच्छी तरह समझ सकता हूं। हम उनसे इससे कम किसी बात की आशा नही कर सकते थे और जब मै लन्दन की ओर रवाना हो रहा था, मुझे खयाल आया कि क्या हम इस समिति के सदस्य इस समय ब्रिटिश-मन्त्रियों के सिर पर बोझ न होंगे? क्या हम दखलन्दाज न होंगे? फिर भी मैंने अपने आपसे कहा कि यह सम्भव है कि हम दख़लन्दाज़ न हों। सम्भव है कि अपने घरेलू मामलों में फंसे रहने पर भी ब्रिटिश मंत्री स्वयं यह अनुभव करें कि गोलमेज़-परिषद् की कार्रवाई उनके लिए प्रधानतः आवश्यक है। हां, तलवार के बल पर भारत पर कब्जा रक्खा जा सकता है; किन्तु इंग्लैण्ड की समृद्धि के लिए, ग्रेटब्रिटेन की आर्थिक स्वतन्त्रता के लिए क्या हितकर होगा? एक गुलाम किन्तु बागी हिन्दुस्तान, या ब्रिटेन की आपत्तियों में हिस्सा बंटाने वाला और उसकी मुसीबतों में कन्धे-से-कन्धा भिड़ाकर उसकी सहायता करने वाला प्रतिष्ठित साझेदार भारत?

हां, यदि आवश्यकता हुई, तो केवल अपनी इच्छा से, संसार की किसी एक जाति अथवा अकेले एक व्यक्ति की स्वार्थ-साधना के लिए नही, वरन् प्रत्यक्षतः समस्त संसार के लाभ के लिए भारत इंग्लैण्ड के साथ–साथ लड़ेगा। यदि मै अपने देश के लिए स्वतन्त्रता चाहता हूं तो

ग्राप विश्वास रखिए कि यदि मै उसकी प्राप्ति में सहायक हो सकता हूं तो उस देश का निवासी होने के कारण, जिसमें संसार की एक पंचमांश मनुष्य-जाति निवास करती है, मै उसे इसलिए नही चाहता कि मैं संसार की किसी जाति अथवा व्यक्ति को चूसूं। यदि मै अपने देश के लिए स्वतन्त्रता चाहूं तो मैं उसके लिए उपयुक्त न होऊंगा यदि मैं प्रत्येक जाति के, चाहे वह गरीब हो या शक्तिशाली, वैसी ही स्वतन्त्रता के समान अधिकार को स्वीकार न करूं। और इसलिए जब मै आपके सुन्दर द्वीप के निकट पहुंचने लगा तो मेंने अपने मन में कहा—सम्भव है संयोग से यह सम्भव हो जाय कि मे ब्रिटिश-मन्त्रियों को यह विश्वास करा सकूं कि शक्ति के बल से अधिकृत नही, वरन् प्रेमरूपी रेशमी डोरी में बंधा हुआ भारत, आपके एक साल के बजट को ही नहीं, अनेक वर्षों के बजट को ठीक करने मे सच्चा सहायक सिद्ध होगा। ऐसे दो राष्ट्र यदि मिल जायं तो क्या नहीं कर सकते—जिनमें एक मुट्ठीभर होने पर भी बहादुर है, तथा जिसकी बहादुरियों का लेखा कदाचित अनुपम है, जो गुलामी की प्रथा से युद्ध करने के लिए प्रसिद्ध है और जिसका एक बार नही, अगणित बार कमजोरों की रक्षा करने का दावा है; और दूसरा एक अत्यन्त प्राचीन राष्ट्र है, करोड़ों की आबादी वाला है, शानदार भूतकाल जिसके पीछे है, हाल में जो दो महान इस्लाम और हिन्दू संस्कृतियों का प्रतिनिधि है, जिसमें एक बहुत बड़ी तादाद में ईसाई आबादी भी है तथा जिसमें संख्या में अंगुलियों पर गिने जाने योग्य, किन्तु परोपकार और व्यवसाय में बढ़े हुए पारसी हैं। भारतवर्ष मे इन सब संस्कृतियों का केन्द्रीकरण हुआ है। यह कल्पना कर लें कि ईश्वर यहां एकत्रित हिन्दू और मुसलमान प्रतिनिधियों को ऐसी सद्बुद्धि देता है कि वे आपसी मतभेद को भूलकर आपस में सम्मानप्रद समझौता कर लेते हैं। वह देश और यह देश दोनों एकसाथ लीजिए। मै फिर अपने से और आपसे यह प्रश्न करता हूं कि क्या एक स्वाधीन भारत, ग्रेटब्रिटेन की तरह पूर्ण स्वतन्त्र भारत, और ब्रिटेन इन दोनों देशों की सम्मानप्रद

साझेदारी दोनो के लिए लाभप्रद नही हो सकती ? क्या वह इस महान राष्ट्र के घरेलू मामलों तक मे सहायक नही हो सकता ? मै इस आशा के स्वप्न लेकर यहा पहुंचा हूं और अभी तक उस सुख-स्वप्न को कायम रख रहा हूं।

इतना कह चुकने पर कदाचित् अब मेरे लिए विशेष कुछ कहने को नही रह जाता। फिर आप लोग तफसीली बाते तय करते रहेंगे और मुझे आपको यह बताने की जरूरत न रहेगी कि सेना के नियन्त्रण, अन्तर्राष्ट्रीय मामलों और अर्थ-विभाग पर अधिकार तथा राजस्व और आर्थिक नीति के संचालन आदि से मेरा क्या आशय है ! मै तो आर्थिक लेन-देन के प्रश्न की तफसील में, जिसे कल एक मित्र ने अत्यन्त पवित्र प्रश्न बताया था, नही पड़ना चाहता। मैं उनके विचार से सहमत नही हू। यदि किसी साझेदार का हिसाब होता हो तो उसके लेखे-जोखे की जांच और जोड-तोड की आवश्यकता रहती है, और महासभा यह कहकर किसी अशिष्टाचरण की दोषी न बनेगी कि राष्ट्र अपने तईं यह समझ ले कि वह कितनी जिम्मेवारी अपने सिर पर लेगा और कितनी नही उसे लेनी चाहिए। इस जांच और निरीक्षण की मांग केवल भारत के ही हित के लिए नही, वरन् दोनों देशो के हित के लिए है। मुझे निश्चय है कि ब्रिटिश जनता भारत पर कोई ऐसा बोझ नहीं लादना चाहती, जो न्यायतः उसे नही उठाना चाहिए, और महासभा की ओर से यहा मै यह घोषित कर देना चाहता हू कि महासभा किसी भी ऐसे दावे या जिम्मेदारी से इन्कार न करेगी, जो न्यायतः उसे उठानी चाहिए। यदि हमें समस्त संसार का विश्वासपात्र बनकर एक प्रतिष्ठित राष्ट्र की तरह रहना है तो उचित कर्जे की हम एक-एक पाई अपने खून तक से चुकायगे,

मै नहीं समझता कि आपको महासभा के इस प्रस्ताव की तफसील में ले जाऊं और उसकी प्रत्येक धारा का महासभा के शब्दों मे अर्थ समझाऊं। यदि ईश्वर ने चाहा कि समिति आगे की कार्रवाई में, जैसे-

जैसे वह आगे बढ़ती जाय, मै भाग लेता रहू तो मै आपको इन धाराओं का आशय समझा सकूंगा । कार्रवाई के दौरान में मे आपको सरक्षणों का आशय भी बतलाऊंगा; लेकिन मै समझता हूं कि मे काफी बोल चुका हूं और लार्ड चांसलर महाशय, आपके उदार अनुग्रह से, इस समिति का काफ़ी समय ले चुका हूं । वास्तव में मैंने इतना समय लेने का खयाल न किया था; लेकिन मैने अनुभव किया कि मै जिस उद्देश्य से यहा आया हूं उसके प्रति न्याय न करूंगा, यदि मे इस समय भी मेरे हृदय मे जो कुछ है वह सब निकाल कर इस समिति और ब्रिटिश राष्ट्र के सामने जिसके लि हम भारतीय प्रतिनिधि आज मेहमान हैं, न रख दूं । मे यह विश्वास लेकर यहा से जाना पसन्द करूंगा कि ब्रिटेन और भारत में मै बराबर की साझेदारी का नाता जोड सका ।

मै यह कहने के सिवा और अधिक कुछ नही कर सकता कि जब-तक मै यहा रहूंगा, मै ईश्वर से बराबर यही प्रार्थना करता रहूंगा कि यह उद्देश्य सफल हो। लार्ड चासलर महाशय, मैंने लगभग ४५ मिनट ले लिये; लेकिन आपने मुझे नही रोका, अतः आपके इस सौजन्य के लिए मे आपको धन्यवाद देता हूं । मे इस अनुग्रह का अधिकारी नहीं था, इसलिए मै आपको पुनः धन्यवाद देता हू ।

: २ :

धारा-सभाएं

लार्ड चान्सलर महाशय, मै बडी हिचकिचाहट के साथ इस बहस में भाग ले रहा हूं । इसके पहले कि उन बहुत-सी बातों पर, जो बहस के लिए यहां नोट की गई हैं, विचार करने के लिए आगे बढ़ूं, मैं आपकी इजाजत से उस भाव के बोझ से अपने को हलका कर लेना

चाहता हूं जो सोमवार से मुझे क्लेश पहुंचा रहा है। मै उन बहसों को, जो इस समिति मे होती रही हैं, बडे गौर से देखता रहा हूं। मैने प्रतिनिधियों की सूची का अध्ययन करने का प्रयत्न किया, जो पहले नही कर पाया था, और सबसे पहला दु खद भाव जो मेरे मन मे पैदा हुआ वह यह कि हम लोग राष्ट्र के, जिसका प्रतिनिधित्व हमे करना चाहिए, चुने हुए प्रतिनिधि नही हैं, बल्कि हम लोग सरकार के चुने हुए हैं। मै भारत के भिन्न-भिन्न पक्षों और दलों को अनुभव से जानता हू, इसलिए जब मै सूची पर गौर करता हू तो मै देखता हूं कि यहां ऐसे कुछ व्यक्तियो का अभाव है, जिनकी उपस्थिति आवश्यक थी। इससे मै प्रतिनिधियो के चुनाव के सम्बन्ध मे अस्वाभाविकता के भाव से दुःखी हूं।

अस्वाभाविकता अनुभव करने का मेरा दूसरा कारण यह है कि इन कार्रवाइयों का अन्त होगा और ये हमे वास्तव मे किसी ओर ले जायंगी, यह मुझे दिखाई नही पड़ता है। यदि हम लोग इसी प्रकार से आगे बढे तो मै नही समझता कि इस समिति मे उठे हुए बहुत-से प्रश्नों पर बहस कर चुकने के बाद हम किसी नतीजे पर पहुच सकेगे।

इसलिए, लार्ड चान्सलर महोदय, सबसे पहले मै अपनी हार्दिक सहानुभूति आपके साथ प्रकट करूँगा कि आप बडे धैर्य और सौजन्य से पेश आ रहे हैं। मै सचमुच आपको इस कष्ट के लिए, जो आप इस समिति में उठा रहे है, धन्यवाद देता हूं और आशा करता हूं कि आपका और हमारा काम पूरा होने पर, मेरे लिए यह सम्भव होगा कि हम लोगों को कुछ वास्तविक परिणाम देखने योग्य बनाने या विवश किये जाने पर मै फिर आपको वधाई दूं।

क्या मै यहां पर सम्राट् के सलाहकारो के खिलाफ एक नम्र और विनीत शिकायत कर सकता हूं ? हम लोगों को समुद्र-पार से लाकर इकट्ठा करके—और मैं जानता हूं कि इस बात को जानते हुए कि बिना किसी अपवाद के हममें से सब लोग उसी तरह अपने कामों में संलग्न हैं,

जैसे कि वे स्वयं हैं, हम लोग अपने-अपने कामों को छोड़ कर यहां इकट्ठे हुए हैं—क्या यह उनके लिए सम्भव नहीं कि वे हमें रास्ता दिखावें ? क्या मैं आपके द्वारा उनसे दरख्वास्त नहीं कर सकता कि वे हमें बतावें कि उनके विचार क्या हैं ? क्या मैं आपके सामने यह कहने का साहस करूं कि मैं प्रसन्न होऊंगा और मेरा खयाल है कि यही ठीक तरीक़ा होगा कि वे हम लोगों की सम्मति लेने के लिए हमारे सामने अपने निश्चित प्रस्ताव रक्खें ? यदि ऐसा किया गया तो मुझे इसमें सन्देह नहीं कि हम लोग किसी-न-किसी निर्णय पर पहुंच सकेंगे, फिर वह चाहे अच्छा हो या बुरा, सन्तोषजनक हो अथवा असन्तोषजनक। इसके विपरीत यदि हम लोग इस समिति को बहस-मुबाहिसे की समिति बना दें, जिसका हरेक सदस्य जुदे-जुदे मुद्दों पर धारा-प्रवाह भाषण दे तो मैं नहीं समझता कि हम लोग उस ध्येय की कोई सेवा कर सकेंगे और उसे आगे बढ़ा सकेंगे, जिसके लिए कि हम लोग यहां इकट्ठे हुए हैं।

मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यदि आप कर सकें तो यह लाभदायक होगा कि एक उप-समिति मुकर्रर कर दी जाय, जो किसी नतीजे पर पहुंचने के लिए आपको कुछ विचार दे सके, जिससे हमारी कार्रवाई उचित समय में खतम हो जाय। मैंने केवल आपके तथा सदस्यों के विचार के लिए ही इन सूचनाओं को आपके सामने रक्खा है, जिससे कदाचित् आप कृपा कर सम्राट् के सलाहकारों के सामने ये सूचनाएं विचारार्थ पेश करें।

मैं चाहता हूं कि वे हमें रास्ता बतावें और अपनी योजनाएं सबके सामने रक्खें। मैं चाहता हूं कि वे हमें बतावें कि मान लीजिए, यदि हम लोग उन्हें अपने भाग्य का निपटारा करने के लिए पंच नियुक्त करें तो वे क्या करेंगे ? यदि वे हमारी राय और मशवरा मांगने की भलमनसाहत दिखावेंगे तो हम लोग अपनी-अपनी राय देंगे। यह वास्तव में एक अच्छा उपाय होगा, बनिस्बत इसके कि हम लोग निराशाजनक अनिश्चितता तथा असीम विलम्ब की अवस्था में पड़े रहें।

इतना कहने के बाद अब में 'दूसरे शीर्षक' के अन्तर्गत विचारणीय प्रश्नों पर कुछ तजवीज पेश करने का साहस करूंगा। मेरी वही कठिनाई है, जिसका सामना सर तेजबहादुर सप्रू को करना पड़ा। यदि मै उन्हें ठीक-ठाक समझा हूं तो उनका कहना है कि वह इस बात से परेशान हो गए कि उनसे विभिन्न शीर्षकान्तर्गत सूक्ष्म-सूक्ष्म बातों पर बोलने को तो कहा गया; किन्तु उन्हें यह न बताया गया कि वास्तव मे मताधिकार क्या होगा व उनकी तरह उसी कठिनाई का सामना मुझे भी करना पड़ेगा। लेकिन मेरे सामने एक दूसरी कठिनाई और भी है। मैं उप-समिति के सामने महासभा के आदेश को पेश कर चुका हूं। उसी आदेश के अनुसार मुझे प्रत्येक उप-शीर्षक पर बहस करनी होगी। इसलिए इन उप-शीर्षको में से कुछ पर मै महासभा के आदेश के अनुसार अपनी तजवीज और सम्मति पेश करूंगा। यदि उप-समिति इस बात को नहीं जानती कि उसका उद्देश्य क्या है तो मेरी सम्मति का, जो मै दूंगा, उप-समिति के लिए, वास्तव मे कोई मूल्य नहीं होगा। उक्त आदेश की दृष्टि से ही मेरी राय की क़ीमत हो सकती है। जब मैं उन शीर्षकों पर विचार करूंगा तब मेरा अर्थ स्पष्ट हो जायगा।

उप-शीर्षक (१) के सम्बन्ध मे जब कि मेरी सहानुभूति व्यापक रूप से डा० अम्बेडकर के साथ है, मेरी बुद्धि सर्वथा श्री गोविन जोन्स तथा सर सुलतान अहमद की ओर जाती है। यदि हमारी उप-समिति एक-विचार की होती, जिसके सदस्य मत देकर निर्णय करने के अधिकारी होते तो उस दशा मे मै डा० अम्बेडकर के साथ बहुत दूर तक जा सकता था; लेकिन हमारी स्थिति वैसी नही है। वर्तमान उप-समिति बड़ी बेमेल है, उसका प्रत्येक सदस्य या सदस्या पूर्ण स्वतन्त्र और अपने विचार प्रकट करने का या की अधिकारी या अधिकारिणी है। ऐसी दशा में मेरी नम्र सम्मति में हमें रियासतों से यह कहने का अधिकार नहीं है कि वे क्या करें और क्या न करें। ये रियासतें बड़ी उदारता के साथ हमारी सहायता करने के लिए आगे आई हैं और कहती हैं

कि वे हमारे साथ संघ में शामिल होंगी, और कदाचित् अपने वे कुछ अधिकार भी छोड़ देने के लिए तैयार हो जायं, जिनका विपरीत दशा में वे अकेले ही उपभोग करतीं। उस हालत में मैं इसके सिवा और कुछ नहीं कर सकता कि सर सुलतान अहमद की इस राय का, जिसकी कि श्री गोविन जोन्स ने भी ताईद की है, समर्थन करूं कि अधिक-से अधिक हम जो कर सकते हैं वह यही है कि हम रियासतों से विनय करें और उन्हें अपनी निजी कठिनाइया बतावे; किन्तु इसके साथ ही मैं यह खयाल करता हूं कि हमें उनकी खास कठिनाइयों को भी समझ लेना चाहिए।

इसलिए मैं उन महान नरेशों के विचार के विचारार्थ एक या दो सूचनाएं पेश करने का साहस करूंगा और यह निवेदन करूंगा जनता का, जनता की ओर से निर्वाचित, समाज की निम्नातिनिम्न श्रेणी का एक प्रतिनिधि होने की हैसियत से। मैं उनसे विनती करूंगा कि वे जो कोई भी योजना तैयार करें और समिति के सामने स्वीकृति के लिए पेश करें, उनके लिए उचित होगा कि वे उस योजना मे प्रजा का भी ध्यान रक्खे। मैं यह ख़याल करता हू और जानता हू कि उनके हृदयों मे उनकी प्रजा का हित है। मैं जानता हू, वे उनके हितों की रक्षा का उत्साह के साथ दावा करते है। किन्तु यदि सब बातें ठीक हुईं तो वे 'प्रजाकीय भारत'—यदि ब्रिटिश भारत को मैं यह नाम दूं—के साथ अधिकाधिक सम्पर्क में आवेंगे और उस भारत के निवासियों के साथ उसी तरह समान हित स्थापित करना चाहेंगे, जिस प्रकार 'प्रजाकीय भारत' 'नरेशों के भारत' के साथ समान हित स्थापित करना चाहेगा। अन्त में, कुछ भी हो, दोनों भारतो मे वस्तुतः कोई भी तात्त्विक या सच्चा भेद नही है। यदि कोई एक जीवित शरीर को दो हिस्सों में बांट सकता हो तो आप भारत को दो हिस्सों मे बांट सकते हैं। अज्ञात समय से वह एक देश की तरह रहता आया है और कोई भी कृत्रिम सीमा उसे विभाजित कर नही सकती। नरेशों की

प्रशसा मे यह कहना ही पड़ेगा कि जिस समय उन्होंने साफ तौर से और साहस के साथ अपने आप को संघ-शासन के पक्ष में घोषित किया, उस समय उन्होने यह सिद्ध कर दिया कि वे भी उसी रक्त के है, जिसके कि हम—वे भी हमारे ही भाई-बन्ध हैं। वे इसके विपरीत कर ही कैसे सकते थे ? हमारे-उनके बीच इसके सिवा और कोई अन्तर नही कि हम सामान्य व्यक्ति हैं और ईश्वर ने उन्हें विषिष्ट पुरुष, नरेश, बनाया है। मै उनकी भलाई चाहता हूॅ, मै उनकी सब प्रकार की वृद्धि चाहता हूँ और मै प्रार्थना करता हूॅ कि उनकी सुख-समृद्धि का उपयोग उनकी अपनी जनता, उनकी अपनी प्रजा की प्रगति में हो।

मे इससे आगे न जाऊंगा; जा नही सकता। मै उनसे एक प्रार्थना कर सकता हूॅ। हम जानते हैं कि उनके लिए छूट है कि वे सघ-योजना में शरीक हों या न हों। यह हमारा काम है कि हम उनके संघ में आने का मार्ग सुगम कर दे; उनका काम यह है कि वे खुली भुजाओं से उनका स्वागत करने का हमारा मार्ग सुगम कर दें।

मै जानता हूॅ कि 'दो और लो' की इस भावना के बिना हम संघ-शासन की किसी निश्चित योजना पर न पहुंच सकेंगे और यदि पहुंचे भी तो अन्त मे झगड कर तितर-बितर हो जायंगे। इसलिए मैं यह अधिक पसन्द करूंगा कि जबतक हम हृदय से उस बात को न चाहें, तबतक किसी सघ-योजना में शरीक न हों। यदि हम उसमें शरीक हों तो पूरे हृदय से हों।

दूसरे शीर्षक के विषय मे मै देखता हूँ कि अपात्रता पर ही विचार किया गया है कि किसी प्रकार की अपात्रता होनी चाहिए अथवा नहीं ? यद्यपि मै जन-सत्तावादी होने का दावा करता हूँ, फिर भी निस्सकोच कह सकता हूॅ कि उम्मेदवार के लिए कुछ अपात्रता (Disqualification) निर्धारित करने अथवा किसी सदस्य को अलग करने के लिए कोई अपात्रता निश्चित करने में मत-दाता के अधिकार का कोई विरोध नहीं होता। यह अपात्रता क्या होनी चाहिए, इस विषय पर मै अभी

चर्चा नही करना चाहता। अभी तो मै केवल इतना ही कहना चाहता हूँ कि अपात्रता के विचार और सिद्धान्त का मै पूरा समर्थन करूँगा।

मै 'नैतिक पतन' शब्द से डरता नही, विपरीत इसके मै उसे अच्छा मानता हूँ। अवश्य ही गहरे-से-गहरे विचार के बाद निर्धारित शब्दो पर कठिनाइयां तो होगी ही; किन्तु न्यायाधीशो का काम इन कठिनाइयों को दूर करना न होगा तो और क्या होगा ? कठिनाई पड़ने पर न्यायाधीश हमारी सहायता करेगे और 'नैतिक पतन' मे किन-किन बातों का समावेश है और किन का नही, यह वे हमे बतावेगे। यदि संयोग से मुझ-जैसे सविनय भंग करने वाले व्यक्ति के कार्य को 'नैतिक पतन' समझा जायगा तो मै उस निर्णय को स्वीकार कर लूंगा। मैं अपात्र अथवा अयोग्य ठहरा दिये जाने की परवा नही करता। कई लोगों को कठिनाइयां भी सहनी पड़ती हैं; किन्तु इससे मै यह नही कहना चाहता कि किसी प्रकार की अपात्रता होनी ही नही चाहिए और यदि हो तो उससे मतदाता के अधिकार का अपहरण होता है। यदि हम कोई कसौटी अथवा आयु की मर्यादा रखना चाहें तो मै समझता हूँ कि हमे चारित्र्य की मर्यादा भी रखनी चाहिए।

तीसरा विषय प्रत्यक्ष (Direct) और अप्रत्यक्ष (Indirect) चुनाव का है। अप्रत्यक्ष चुनाव का जहा तक सिद्धान्त से मतलब है उसपर मुझे अपने साथ सहमत होते देखने के लिए, मै चाहता हूँ कि लार्ड पील यहां उपस्थित होते। मै जानकार नही हूँ, केवल एक सामान्य व्यक्ति की तरह बोल रहा हूँ; किन्तु 'अप्रत्यक्ष चुनाव' शब्द से मै डरता नही। मै नही जानता कि इसका कोई पारिभाषिक अर्थ है। यदि कोई ऐसा अर्थ हो तो मै उससे सर्वथा अपरिचित हूँ। मै इसका क्या अर्थ करता हू, वह मै स्वयं बता देना चाहता हूँ। यदि उसे ही अप्रत्यक्ष चुनाव भी कहा जाता हो तो मै निश्चयपूर्वक उसके लिए चारों ओर घूमकर उसके पक्ष में बोलूंगा और संभवतः इस प्रकार के पक्ष में बहुत-सा लोकमन भी तैयार कर लूंगा। मै बालिग़ मताधिकार से बंधा हुआ हूं, किसी भी

तरह हो, कांग्रेसवादियों ने उसे स्वीकार किया है। बालिग मताधिकार अनेक कारणों से एक यह है कि वह मुझे सबकी—केवल मुसलमानों की ही नही, प्रत्युत अछूत, ईसाई, मजदूर तथा अन्य सब वर्गों की—उचित आकाक्षाओं की पूर्ति के लिए समर्थ बनाता है।

जिस व्यक्ति के पास धन है वह मत दे सकता है; किन्तु जिस व्यक्ति के पास चरित्र है; पर धन अथवा अक्षर-ज्ञान नही, वह मत नही दे सकता अथवा जो व्यक्ति सारे दिन पसीना बहाकर ईमानदारी से काम करता है, वह गरीब होने के अपराध के कारण मत न दे सके, यह कल्पना ही मुझसे नही सही जा सकती। यह असह्य बात है और गरीब-से-गरीब ग्रामवासी के साथ रहकर और उनमे मिलकर और अछूत समझे जाने मे अपना गौरव मानते हुए मै जानता हूं कि इन गरीब लोगों में, स्वय अछूतों मे, मानवता के सुन्दर-से-सुन्दर नमूने मिल सकते हैं। अछूत भाई को मत न मिले इसकी अपेक्षा मे अपना मत छोड़ देना कही अधिक पसन्द करूंगा।

मै अक्षर-ज्ञान के उस सिद्धान्त पर मोहित नही कि मत-दाता को कम-से-कम लिखने, पढ़ने और गणित का बोध होना चाहिए। मै चाहता हूं कि मेरे भाइयों को लिखने, पढने और गणित का ज्ञान प्राप्त हो; किन्तु उसके साथ ही मै जानता हूं कि यदि उन्हे मत देने का अधिकारी बनने के लिए पहले लिखने, पढ़ने और गणित का ज्ञान प्राप्त कर लेना आवश्यक हो तो मुझे अनन्त काल तक प्रतीक्षा करनी होगी; और मै इतने समय तक प्रतीक्षा करने के लिए तैयार नही हूं। मै जानता हूं कि इनमें के करोडों व्यक्तियों में मत देने की शक्ति है; किन्तु हम यदि इन सबको मताधिकार दे तो उन सबको मतदाताओं की सूची मे दाखिल करना और व्यवस्थित निर्वाचन-मण्डल तैयार करना सर्वथा असम्भव नही तो अत्यन्त कठिन अवश्य होगा।

मै लार्ड पील की इस आशंका से सहमत हूं कि यदि हमारे निर्वाचन-मण्डल इतने बड़े हों कि हमारी उनतक पहुंच न हो सके तो उम्मेदवार

स्वयं इस महान लोकसमूह के संसर्ग में बारम्बार न आ सकेगा और उसका मत न जान सकेगा। यद्यपि व्यवस्थापिका सभा के सम्मान की मैंने कभी आकांक्षा नहीं की, फिर भी इन निर्वाचन-मण्डलों का कुछ काम मुझे करना पड़ा है, और इसलिए मैं जानता हूं कि यह कितना कठिन काम है। जो लोग इन व्यवस्थापिका सभाओं के सदस्य रह चुके हैं, उनके अनुभव से भी मै परिचित हूं।

इसलिए हमने महासभा में एक योजना तैयार की है। यद्यपि वर्तमान सरकार ने हमपर उद्धतपने से प्रतियोगी सरकार स्थापित करने का आरोप किया है, तो भी मैं इस आरोप को अपने ढंग से स्वीकार किये लेता हूं। यद्यपि हमने प्रतियोगी सरकार स्थापित नहीं की है, फिर भी किसी दिन वर्तमान सरकार को अलग कर देने और उचित समय पर विकास-क्रम से इस सरकार को—शासन को—हमारे अपने हाथों में ले लेने की हमारी आकांक्षा अवश्य है।

पिछले चौदह वर्ष से राष्ट्रीय महासभा के प्रस्ताव बनाने का काम करते रहने से और बीस वर्ष तक दक्षिण अफरीका मे ऐसी ही संस्था का यही काम करने से मुझे जो अनुभव हुआ है, वह यदि मै यहा बताऊं तो आपको इसमे कुछ आपत्ति न होगी। महासभा के विधान मे हमने प्रायः बालिग मताधिकार रक्खा है। हमने नाम मात्र की चार आना वार्षिक फीस लगा रक्खी है। यहां भी यह फीस रखने मे मुझे कोई आपत्ति नही है। मै लार्ड पील के इस दूसरे भय मे भी सहमत हूं कि अपने गरीब देश में हमें यह भी खतरा है कि केवल चुनाव पर ही प्रचुर धन बरबाद न हो जाय। मै इसे टालना चाहता हूं और इसलिए मैं तो वह रकम वसूल भी कर लूंगा। यदि मुझे यह समझाया जाय कि चार आना भी बोझ हो पड़ेगा, तो मै वह मान लूंगा और उसे छोड़ दूंगा। जो हो, कांग्रेस–संस्था मे तो हमने वह रक्खा है।

हमारी एक दूसरी बात भी जानने योग्य है। मत देने की कार्य–पद्धति के सम्बन्ध मे मै जो कुछ जानता हूं, उससे मालूम होता है कि

मतदाताओं की सूची तैयार करने वाले जिन्हें मत देने का अधिकारी मानें उन सबका नाम सूची में लिखने के लिए बाध्य हैं; इसलिए किसी की मत देने की इच्छा हो अथवा न हो, फिर भी वह अपना नाम सूची मे आया हुआ देखता है। ऐसे ही एक दिन मैंने डर्बन (नेटाल) में अपना नाम मतदाताओं की सूची मे देखा। वहां की व्यवस्थापिका सभा की स्थिति पर प्रभाव डालने की मेरी जरा भी इच्छा न थी, और इसलिए मैंने अपना नाम मतदाताओं की सूची मे शामिल करवाने का जरा भी खयाल न किया था; किन्तु किसी उम्मेदवार को जब मेरे मत या वोट की आवश्यकता हुई, तब उसने मेरा ध्यान इस बात की ओर खीचा कि मेरा नाम मतदाताओं की सूची मे है। तबसे मुझे मालूम हुआ कि मत-दाताओं की सूची किस प्रकार तैयार की जाती है।

इसलिए हमारी योजना ऐसी हो कि जिसे मत देना हो वह मत प्राप्त कर सकता है। जिसे मत की आवश्यकता हो उसे वह प्राप्त करने की छूट्टी है और वय-मर्यादा तथा सबके लिए समान रूप से लागू कोई अन्य शर्त हो तो उसे स्वीकार कर लाखो पुरुष और उसी तरह स्त्रियां भी मतदाताओ की सूची मे अपना नाम लिखवा सकती हैं। मेरा खयाल है कि इस प्रकार की योजना मतदाताओं की सूची को व्यवस्थित मर्यादा मे रख सकेगी।

इतना होने पर भी हमारे पास लाखों मनुष्य आवेगे, इसलिए गांवों का सम्बन्ध प्रधान अथवा बड़ी व्यवस्थापिका सभा से जोडने के लिए कुछ-न-कुछ किये जाने की आवश्यकता रह जाती है। हमारे यहां बड़ी व्यवस्थापिका सभा से मिलती-जुलती महासमिति (आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी) है। प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओ से मिलती-जुलती हमारे यहां प्रान्तीय समितियां हैं और छोटी-मोटी अन्य व्यवस्थापिका सभाएं भी हमारे पास हैं और हमारा शासन भी है। हमारी अपनी कार्य-समिति भी है। यह बिलकुल सच है कि इसके पीछे हमारे पास संगीनों का बल नही है; किन्तु अपने निर्णयों को आगे बढाने और लोगों से

उनका पालन कराने का जो बल हमारे पास है, वह उससे कहीं अधिक उत्तम एवं बढ़ा-चढ़ा है। अभी तक हमारे सामने ऐसी कठिनाइयां नहीं आई हैं, जिन्हे हम हल न कर सके हो। मै यह नही कह सकता कि सब अवसरों पर हम निर्णयों का पूरी-पूरी तरह से पालन करा सके हैं किन्तु हम पूरे ४७ वर्ष तक काम करते हुए आगे बढते चले आये हैं और प्रतिवर्ष इस महासभा की ऊचाई अधिक-से-अधिक बढ़ती गई है।

मै आपको बताना चाहता हूँ कि हमारी प्रान्तिक समितियों को अपने निर्वाचनों के विषय मे उपनियम बनाने की पूर्ण स्वतन्त्रता है। मूल आधार अर्थात् मतदाताओं की पात्रता (Qualifications) को वे बिलकुल नही बदल सकती; किन्तु अन्य सब बाते वे अपनी इच्छानुसार कर सकती हैं।

इसलिए मै केवल एक प्रान्त का, जहा ऐसा होता है, उदाहरण दूगा। वहा गाव अपनी-अपनी छोटी समितिया चुन लेते हैं। ये समितियां ताल्लुका समिति चुनती है और ये ताल्लुका-समितियां फिर जिला समिति का चुनाव करती है और जिला समितिया प्रान्तिक समिति का चुनाव करती हैं। प्रान्तिक समितिया अपने सदस्य बड़ी व्यवस्थापक सभा मे—यदि महासमिति को मै यह नाम दू तो—भेजते हैं। इस प्रकार हम यह सब कर सके हैं। मै इस बात की परवा नही करता कि इस योजना में हम ऐसा ही करेगे या कुछ और; किन्तु हमारे यहां ७,००,००० गांव हैं, इनका दिग्दर्शन मैने अवश्य किया है। मेरा विश्वास है कि इन ७,००,००० गावो में देशी राज्यों का भी समावेश हो जाता है। यदि मैं इसमे भूलता होऊ तो बताये जाने पर मै उसे दुरुस्त कर लूंगा; किन्तु मै नम्रतापूर्वक कहूंगा कि 'प्रजाकीय भारत' मे ५,००,००० या कुछ अधिक गांव होगे। हम यह ५,००,००० घटक (Units) बना दें। प्रत्येक घटक अपने-अपने प्रतिनिधि चुनेगा और आप चाहें तो इन प्रतिनिधियों का निर्वाचक मण्डल बडी अथवा सघ-व्यवस्थापिका सभा के प्रतिनधि चुन देगा। मैने तो आपको योजना की केवल रूप-रेखा बता दी है।

आपको यदि यह पसन्द हो, तो तफ़सील की बातें पूरी की जा सकती हैं। यदि हमें बालिग मताधिकार रखना है तो मैंने जो योजना आपको बताई है, उससे मिलती-जुलती किसी योजना का हमें आश्रय लेना होगा। जहां-जहां उसके अनुसार काम हुआ है, मैं आपको अपना ही प्रमाण दे सकता हूं कि वहां उसके बड़े सुन्दर परिणाम निकले हैं, और इन जुदे-जुदे प्रतिनिधियों के द्वारा गरीब ग्रामीण के साथ सम्बन्ध स्थापित करने में किसी तरह की कठिनई प्रतीत नही हुई। यह व्यवस्था बड़ी सरलता से चलती रही है और जहा लोगों ने उसे ईमानदारी से चलाया है वहां वह बड़ी तेजी से और निस्सन्देह बिना किसी उल्लेखनीय खर्च के चली है। मै कल्पना ही नही कर सकता कि इस योजना के अनुसार उम्मेदवार को चुनाव के लिए साठ हजार या एक लाख तक खर्चा करने की सम्भावना हो। ऐसे कई उदाहरण मै जानता हूं, जिनमें चुनाव का खर्च लगभग एक लाख रुपये तक पहुंच गया था, जो कि मेरे खयाल से संसार के सबसे निर्धन देश के लिए अत्याचार था।

इस विषय पर चर्चा करते हुए मै द्विखण्ड-व्यवस्थापिका सभा (Bi-Cameral Legislature) के सम्बन्ध में मेरा जैसा भी कुछ मत है, वह आपके सामने रख देना चाहता हूं। यदि आपकी भावुकता को चोट न पहुंचे तो मै कहूंगा कि इस विषय मे मै श्री जोशी के साथ सहमत हूँ। निश्चय ही मुझे दो व्यवस्थापिका सभाओं का मोह नहीं है, न मैंने उनको स्वीकार ही किया है। मुझे इस बात का जरा भी भय नहीं है कि प्रजाकीय व्यवस्थापिका सभा स्वतन्त्र रूप से जल्दी में कानून पास कर देगी और पीछे से उसके लिए उसे पछताना पड़ेगा। प्रजाकीय व्यवस्थापिका सभा को बदनाम करके उसे उड़ा देना मुझे पसन्द नहीं है। मेरा खयाल है कि प्रजाकीय व्यवस्थापिका सभा अपनी सम्हाल रख सकती है और, क्योंकि इस समय मै ससार के सबसे गरीब देश का विचार कर रहा हूं, इसलिए हम जितना कम-से-कम खर्च करें, उतना ही अच्छा है। मै एक क्षण के लिए भी इस विचार से सहमत नहीं हो

सकता कि प्रजाकीय व्यवस्थापिका सभा के ऊपर यदि कोई दूसरी बड़ी व्यवस्थापिका सभा न हुई तो वह देश को बरबाद कर देगी। मुझे ऐसा कोई भय नहीं है। इसके विपरीत मुझे यह आशंका है कि जब कभी प्रजाकीय सभा और बड़ी सभा मे मतभेद होगा तो दोनों में घनघोर संग्राम मच जायगा। कुछ भी हो, यद्यपि मै इस विषय में कोई निर्णायक तरीका अख्तियार नही करता, फिर भी मेरी यह निश्चित राय है कि हम केवल एक व्यवस्थापिका सभा से काम चला सकते है और इससे लाभ ही होगा। यदि हम अपने मन में एक सभा से काम चला लेने के लिए विश्वास पैदा कर सकें तो हम निश्चय ही एक बहुत बड़े खर्च से बच जायंगे। मै लार्ड पील के इस विचार से सर्वथा सहमत हूं कि पहले के उदाहरणों के सम्बन्ध मे हमे चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। हम स्वयं एक नया उदाहरण पैदा करेगे। हमारा देश एक महाद्वीप है। मनुष्य की किसी भी दो जीवित संस्थाओं मे पूर्ण समानता जैसी कोई वस्तु है ही नही। हमारी अपनी विशेष परिस्थिति है और हमारी अपनी विशेष मनोरचना है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि दूसरे उदाहरणों का विचार किये बिना ही हमें कई बातो मे अपने लिए नया रास्ता निकालना पड़ेगा। इसलिए मै समझता हू कि यदि हम एक ही व्यवस्थापिका सभा के तरीके की आजमाइश करे तो हम गलत रास्ते पर न जायगे। मानव-बुद्धि से जितना सम्भव हो सके उतनी पूर्ण इसे अवश्य बनाइए; किन्तु एक ही सभा से सन्तोष कीजिए। मेरे इस प्रकार के विचार होने से तीसरी और चौथी उपधारा पर मेरे लिए विशेष आवश्यकता नहीं रह जाती।

अब मैं पांचवी उपधारा—विशेष वर्गो के विशेष निर्वाचक-संघ द्वारा प्रतिनिधित्व—पर आता हूं। यहां मै महासभा की ओर से अपने विचार प्रकट करता हूं। महासभा ने हिन्दू-मुस्लिम-सिक्ख समस्या को विशेष व्यवहार से हल करने के लिए अपने आप को तैयार कर लिया है। इसके लिए सबल ऐतिहासिक कारण हैं। किन्तु महासभा इस सिद्धान्त

को किसी भी शकल या रूप मे आगे ले जाने के लिए तैयार नही है। विशेष हितों की सूची मैने ध्यान से सुनी है। अछूतों के विषय मे डा० अम्बेडकर का क्या कहना है, यह मै अभी तक अच्छी तरह समझ नही सका हूं; किन्तु अछूतो के हितो का प्रतिनिधित्व करने मे महासभा डा० अम्बेडकर के साथ अवश्य हिस्सा लेगी। भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक महासभा को जितना दूसरी किसी सस्था अथवा व्यक्ति का हित प्रिय है, उतना ही प्रिय उसे अछूतो का हित है। इसलिए इससे आगे किसी भी विशेष प्रतिनिधित्व का मै जोरों से विरोध करूंगा। बालिग मताधिकार मे मजदूर तथा ऐसे ही अन्य वर्गो के लिए विशेष प्रतिनिधित्व की कोई आवश्यकता नही, और न जमीदारो के लिए ही निश्चित रूप से इसकी जरूरत है; इसका कारण मै आपको बताऊंगा। जमीदारों को उनकी जायदाद से वचित करने की, महासभा की तथा मूक कगालों की जरा भी इच्छा नही है। वे तो चाहते है कि जमीदार अपने किसानों के रक्षक बने। मै समझता हूं कि जमीदारों को तो इसी विचार मे अपना गौरव मानना चाहिए कि उनके किसान—ये लाखों ग्रामवासी—बाहर से आने वाले दूसरे लोगों अथवा अपने मे से किसी की अपेक्षा जमींदारों को अपना प्रतिनिधि चुनना पसन्द करेगे।

इसलिए नतीजा यह होगा कि जमीदारों को अपने किसानों के साथ मिलना होगा, उनका और अपना एक समान-हित स्थापित करना होगा। इससे बढ़कर अच्छी बात और क्या हो सकती है? किन्तु यदि जमीदार, दो सभा हों तो दोनों मे से एक मे, अथवा एक सभा हो तो उसमे अपने विशेष प्रतिनिधित्व की माग पर जोर दें। तो निस्सन्देह वे हमारे बीच एक अप्रिय विवाद उत्पन्न कर देंगे। मै आशा करता हूं कि जमींदार अथवा ऐसे किसी अन्य वर्ग की ओर से इस प्रकार की कोई मांग न की जायगी।

अब मैं अपने अंग्रेज मित्रों की ओर आता हूं। श्री गेविन जोन्स स्वभावतः ही उनके प्रतिनिधि होने का दावा करते हैं। मैं उन्हें नम्रता-

पूर्वक सूचित करूंगा कि अभी तक वे विशेष अधिकार भोगते रहे है, यह विदेशी सरकार जितने दे सकती थी, वे सब सरक्षण वे पा चुके हैं, और उदारतापूर्वक पा चुके हैं। अब यदि वे भारत की सर्वसाधारण जनता के साथ अपने हितो को मिला दे तो उन्हे किसी प्रकार का भय न होगा। श्री गेविन जोन्स ने कहा है कि उन्हें भय लगता है और इसके लिए एक पत्र पढ़कर भी सुनाया है। मैंने वह पत्र नही पढ़ा है। सम्भव है कि कुछ भारतीय यह कहे—"हा, अवश्य, यदि यूरोपियन अग्रेज हमारे द्वारा चुने जाना चाहेगे तो हम उन्हे न चुनेगे।" लेकिन मै श्री गेविन जोन्स को अपने साथ लेकर देश के एक छोर से दूसरे छोर तक घूमूगा और उन्हे बताऊगा कि यदि वे हमारे साथी बनकर रहना चाहेगे तो एक भारतीय की अपेक्षा उनको पहले चुना जायगा। चार्ली एण्ड्रयूज का उदाहरण लीजिए। मै आपको विश्वास दिलाना चाहता हूं कि वे भारत के किसी भी निर्वाचन-सघ की ओर से बिना किसी दिक्कत के चुन लिये जायगे। उनसे पूछिए कि एक छोर से दूसरे छोर तक सारे देश ने उन्हे खुली भुजाओ से स्वीकार कर लिया है या नही ? मै ऐसे कई उदाहरण दे सकता हूं। मै अग्रेजो से प्रार्थना करता हूं कि वे एक बार भारतीय जनता के सद्भाव पर जीवित रह कर देखे और अपने अधिकारों के लिए विशेष अधिकार अथवा सरक्षण की मांग न करें जो कि कार्य साधने का एक गलत तरीका है। मै यह चाहता हूं और इसके लिए उनसे आजिजी करता हूं कि यदि वे भारत मे रहे तो हमारे होकर रहे। मै यह अवश्य महसूस करता हू कि किसी भी योजना मे, जो महा-सभा स्वीकार करे, किसी भी हालत मे, विशेष हितो की रक्षा के लिए कोई स्थान नही है। बालिग-मताधिकार मिलने से विशेष हितों एव वर्गों की रक्षा अपने-आप हो जाती है।

ईसाइयों के सम्बन्ध में एक सज्जन का जो कि अब हमारे साथ नही है प्रमाण दू। उन्होंने कहा था, "हम कोई खास संरक्षण नही चाहते।" मेरे पास ईसाई संस्थाओं के पत्र भी हैं, जिनमें वे कहती हैं कि

उन्हे खास सरक्षण की आवश्यकता नहीं , वे जो कुछ भी विशेष सरक्षण प्राप्त करेगे वह अपनी नम्र सेवाओ के बल पर प्राप्त सरक्षण होगा ।

अब मै एक अत्यन्त नाजुक विषय अर्थात् वफादारी की शपथ पर आता हूं । इस सम्बन्ध मे मै अभी कोई सम्मति न दे सकूगा, क्योकि इसके पहले मै यह जान लेना चाहता हू कि इसका रूप क्या होगा । यदि वह पूर्ण स्वतन्त्रता हो और भारत को सम्पूर्ण स्वराज्य मिलता हो तो स्वभावतः ही वफादारी की शपथ का एक ही रूप हो जाता है । और यदि भारत को पराधीन रहना है तो उसमे मेरे लिए स्थान नही है । इसलिए वफादारी की शपथ के प्रश्न पर आज सम्मति देना मेरे लिए सभव नही है ।

अब अन्तिम प्रश्न लीजिए । प्रत्येक सभा मे यदि सरकार द्वारा नामजद सदस्यो की व्यवस्था हो तो वह कैसी होनी चाहिए ? काग्रसवादियो ने जो योजना तैयार की है, उसमे नामजद सदस्यों के लिए कोई स्थान नही है । विशेषज्ञो अथवा जिनकी सलाह मागी जाय, उनके आने की बात मै समझ सकता हू । वे अपनी सलाह देगे और लौट जायगे । उनके मत देने की आवश्यकता का मै जरा भी औचित्य नही देखता । यदि हम विशुद्ध प्रजातन्त्रयुक्त सस्था चाहते हो तो उसमे तो जनता के प्रतिनिधि ही मत दे सकते हैं । इसलिए जिस योजना मे सरकार के नामजद सदस्यो की गुजाइश हो, उसका मै समर्थन नही कर सकता । किन्तु यह बात मुझे फिर पाचवी उपधारा पर लाती है । मान लीजिए कि मेरे दिमाग मे यह हो—क्योकि महासभा मे भी हमने ऐसा ही रखा है—और हम चाहते भी हैं कि स्त्रिया चुनी जायं, अग्रेज चुने जाय, अछूत भी अवश्य चुने जाय और ईसाई भी चुने जाय । मै अच्छी तरह जानता हू कि ये बहुत बडे अल्पसख्यक वर्ग है; फिर भी अल्पसख्यक हैं, और मान लिया जाय कि निर्वाचक-सघ अपने अधिकारो का ऐसा दुरुपयोग करे कि स्त्रियों, अग्रेजो, अछूतो अथवा जमीदारो को न चुने और उनके इस कृत्य का कोई उचित कारण न हो, तो मै विधान में ऐसी धारा

रखूगा, जिससे यह निर्वाचित व्यवस्थापिका-सभा उन्हे निर्वाचित अथवा नामजद कर सके। किन्तु मै जानता हूं कि यह चुनाव उनका होना चाहिए जो चुने जाने चाहिए थे पर चुने न गये हो। कदाचित् मेरे कथन का अर्थ स्पष्ट न हुआ हो, इसलिए मै एक उदाहरण देता हूं: हमारी एक प्रान्तीय समिति का ठीक ऐसा नियम है कि एक अमुक निश्चित संख्या मे मुसलमान स्त्रियों और अछूतों का चुनाव निर्वाचक मण्डल के लिए अनिवार्यतः आवश्यक है। और यदि वह ऐसा न करे तो पूर्व-निर्वाचित समिति मे जो स्त्रियां, मुसलमान और अछूत उम्मेदवार होते है, उन्ही मे से निर्वाचन करती है; और इस प्रकार उक्त वर्ग की सख्या पूरी की जाती है। यह तरीका है, जो हम काम मे ला रहे है। निर्वाचक-मण्डल इस प्रकार दुर्व्यवहार न करे, इसके लिए यदि कोई प्रतिबन्धक नियम बनाया जाय तो मै उसका विरोध न करूगा, इसके विपरीत उसका स्वागत करूंगा। किन्तु पहले तो मै निर्वाचक मण्डल पर यह विश्वास रखूगा कि वे सब वर्गो के प्रतिनिधि चुनेगे और सम्बन्धी अथवा सजातीयता के अन्ध-भक्त न बन जायगे। मै आपको विश्वास दिला देना चाहता हू कि महासभा की मनोवृत्ति जाति-पाति के भेदभाव तथा ऊच-नीच की नीति के सर्वथा विपरीत है। महासभा सम्पूर्ण समानता के भावो का पोषण कर रही है।

लार्ड मेकी महाशय, मैंने इतना समय लिया, इसके लिए मुझ खेद है, और मुझ आपने इतना अवकाश देने की उदारता दिखाई, इसके लिए मै आपका आभारी हू।*

*इस भाषण पर यह बहस हुई—

सर अकबर हैदरी—मै एक सवाल पूछं? जो ५,००,००० गांव या निर्वाचन-क्षेत्र है, क्या वे पहले प्रान्तिक कौसिल के लिए अपने प्रतिनिधि चुनेगे और तब प्रान्तिक कौसिले संघीय धारासभाओं के प्रतिनिधि चुनेगी, अथवा प्रान्तिक कौसिलों और संघीय धारासभा के निर्वाचन-क्षेत्र पृथक्-पृथक् रहेंगे?

: ३ :

दो कसौटियां

जबसे मैं लन्दन आया हूँ, मुझे सर्वत्र मित्रता और सच्चे प्रेम ही का अनुभव हुआ है। नित्यप्रति मेरे नये-नये मित्र बनते जा रहे हैं; किन्तु आपने (श्री ए० फेनर ब्रोकवे ने) मुझे यह याद दिलाई है कि आवश्यकता के समय आप हमारे मित्र रहे हैं और वास्तव मे आवश्यकता के समय जो काम आवे, वही सच्चे मित्र कहाते हैं। जब ऐसा प्रतीत होता था कि भारत का, या यों कहिए महासभावादियों का इस पृथिवी पर रहने वाले प्रायः सभी ने साथ छोड़ दिया है, उस समय आपने दृढ़तापूर्वक महासभा का साथ दिया और महासभा की जो स्थिति थी, उसे अपनी स्थिति समझा। आपने महासभा के कार्यक्रम मे अपने विश्वास को आज फिर से ताज़ा किया है और ऐसा करके आपने मेरे बोझ को हलका किया है।

गांधीजी—महाशय, सर अकबर हैदरी के जवाब में प्रथम तो मै यह कहना चाहता हूं कि यदि मेरी योजना के सामान्य सिद्धान्त हम स्वीकार कर लें तो वस्तुतः ये सब बातें बिना किसी भी कठिनाई के तय हो सकती हैं। लेकिन सर अकबर हैदरी ने जो ख़ास प्रश्न पूछा है, उसके जवाब में मैं कहूंगा कि जिस योजना का मैं प्रसार कर रहा हूं उसमें गांवों के द्वारा निर्वाचकों अथवा मतदाताओं का चुनाव होगा—कुल गांव एक आदमी को चुनेगा और कहेगा कि "तुम हमारे लिए अथवा हमारी तरफ से मत दोगे।" और वह आदमी प्रान्तिक कौंसिलों या मध्यवर्ती धारासभा के चुनाव के लिए उनका एजेन्ट हो जावेगा।

सर अकबर हैदरी—तब वह आदमी दुहेरी स्थिति में रहेगा, प्रान्तिक

महासभा के प्रतिनिधि की हैसियत से जो सन्देश देने के लिए मैं यहां भेजा गया हूँ, वह सन्देश आपको सुनाना ठीक वैसी ही बात होगी जैसा कि काशी को गगाजल ले जाना। महासभा के दावे के औचित्य अथवा अनौचित्य के बारे मे आप सब जानते हैं और मेरा दृढ विश्वास है कि आपके हाथों मे महासभा का दावा बिलकुल सुरक्षित है। आपने आज के अपने बर्ताव से महासभा के ज़रिये भारतीय गावों के करोडों मूक और अधपेट रहनेवाले प्राणियो के साथ की अपनी मित्रता पर मुहर लगा दी है।

यह कल्पना की जाती है कि आप एक दावत मे शरीक हुए हैं। मैं अग्रेजी दावतों से खाने से नही, पर देखने से ही परिचित हूँ और जब मैंने इस मेज़ को देखा तो मैंने अनुभव किया कि आपने दावत के नाम पर कितनी कुर्बानी की है। मुझे आशा है कि चाय का समय आने तक त्याग की यह भावना कायम रहेगी, जब आप अपने लिए कुछ बढ़िया-बढ़िया चीजें काम में ला सकेंगे, जो अंग्रेजी होटलों और विश्राम-गृहो मे आपको मिला करती हैं। किन्तु इस प्रकट विनोद के

कौंसिलों के और साथ ही केन्द्रीय धारासभा के चुनाव में भी वह मत देगा?

गांधीजी—वह ऐसा कर सकेगा; लेकिन आज तो मैं सिर्फ केन्द्रीय धारासभा के चुनाव की बाबत कह रहा था।

सर अकबर हैदरी—इस प्रकार निर्वाचित प्रान्तिक कौंसिल के द्वारा केन्द्रीय धारासभा के चुनाव के किसी भी विचार को क्या आप स्वीकार न करेंगे?

गांधीजी—मैं उसे अस्वीकार नहीं करता; लेकिन वही स्वयं मुझे पसन्द नहीं आता। अगर 'अप्रत्यक्ष चुनाव' का यही विशिष्ट अर्थ हो तो मैं उसे स्वीकार नहीं करता। मैं तो 'अप्रत्यक्ष चनाव' का शब्द-व्यवहार अस्पष्ट रूप में कर रहा हूं। अगर इसका पारिभाषिक (Technical) अर्थ ऐसा हो तो मैं उसे नहीं जानता।

पीछे गम्भीरता भी विद्यमान है। मुझे मालूम है कि आपने कुछ त्याग किया है। आपमे कुछ लोगों ने भारत की स्वाधीनता के कार्य का प्रतिपादन करने के लिए 'स्वाधीनता' शब्द का पूर्णतया अंग्रेजी अर्थ समझते हुए बहुत कुछ त्याग किया है; किन्तु सम्भव है यदि आप भारत का पक्ष-प्रतिपादन करते रहे तो आपको और भी अधिक कुर्बानियां करनी पड़े। जब मैंने यहा आना स्वीकार किया तो मेरे मन मे किसी प्रकार का भ्रम न था। जिस दिन मैंने लन्दन मे प्रवेश किया, उस दिन आपने-मेरे मु ह से सुना होगा कि मेरे लन्दन आने के प्रबलतम कारणों मे से एक कारण यह था कि मैंने एक सम्माननीय अग्रेज के साथ जो वादा कर लिया था उसे मुझे पूरा करना था। उस वादे के अनुसार ही जिन अग्रेज स्त्री-पुरुषो से मै मिलता हूँ, उन्हे अपनी शक्ति-भर यह बतलाने की कोशिश करता हूँ कि जिस बात को महासभा चाहती है, उसे पाने के लिए भारत मुस्तहक है। साथ ही मै यह बताने की भी कोशिश कर रहा हूँ कि महासभा का निश्चय है और मै महासभा के आज्ञापत्र मे वर्णित प्रत्येक बात की माग करके महासभा के सम्मान की, भारतवर्ष के सम्मान की, रक्षा करने के लिए यहा आया हूँ। महासभा के दावे मे सिवाय उस हद तक जिसकी आज्ञापत्र मे अनुमति दी गई है, कुछ भी कमी करने का अधिकार मुझे नही है। मै यह अनुभव करता हूँ कि मेरा काम कठिन है, करीब-करीब मनुष्य की शक्ति के बाहर का है। भारतवर्ष की मौजूदा स्थिति के विषय मे यहां कितना अधिक अज्ञान फैला हुआ है! वहां के सच्चे इतिहास के सम्बन्ध मे भी बहुत अधिक अज्ञान फैला हुआ है।

जब मै यहॉ आनेवाला था तो मुझे शान्तिधर्म के उपासक (Quaker) एक नौजवान मित्र ने याद दिलाई थी कि मेरा यहाँ आना फिजूल होगा, कारण कि यहॉ आप लोगों को बचपन से वास्तविक इतिहास नही बल्कि झूठा इतिहास सिखाया गया है। ज्यों-ज्यों मै अंग्रेज स्त्री-पुरुषों के सम्पर्क मे आता हूं, उस मित्र द्वारा कहे गये सत्य

को मूर्त्तिमान रूप मे देखता हूं। उनके लिए यह समझना महा कठिन, प्राय: असम्भव-सा है कि कम-से-कम भारतवासी तो यही मानते हैं कि भारत मे अंग्रेज़ी शासन का कुल परिणाम राष्ट्र के लिए उपयोगी साबित होने की अपेक्षा हानिकर ही साबित हुआ है। अंग्रेजो के सम्पर्क से होनेवाली भारत की भलाइयों की ओर निर्देश करना फिज़ूल है। अधिक महत्त्व की बात तो यह है कि हानि-लाभ दोनों को विचार कर यह मालूम किया जाय कि भारत को क्या-क्या भुगतना पडा है।

मैंने दो अचूक कसौटियाँ निश्चित की हैं। क्या यह सही है या नहीं कि आज भारत दुनिया भर मे सबसे गरीब देश है और उसमें छ: महीने लाखो आदमी बेकार रहते हैं? इसी तरह क्या यह सही है या नही कि भारत को सत्वहीन देश बना दिया गया है; अनिवार्य नि:शस्त्रीकरण के द्वारा ही नही, बल्कि ऐसी अनेक सुविधाओं से वंचित रखकर जिनका एक स्वतंत्र देश के नागरिक सदा उपयोग कर सकते है?

यदि जाच करने पर आपको पता चले कि इन दोनो परीक्षाओ में इंग्लैंड असफल हुआ है—मै यह नही कहता कि बिलकुल ही असफल हुआ है, बल्कि एक बडी हद तक असफल हुआ है—तो क्या अबतक वह वक़्त नही आया है कि इंग्लैंड अपनी नीति बदले?

जैसा कि एक मित्र ने कहा है और जैसा कि स्वर्गीय लोकमान्य तिलक ने हजारों ही सभा-मचो पर से बार-बार कहा है, "स्वतत्रता और स्वाधीनता भारत का जन्मसिद्ध अधिकार है।" मेरे लिए यह सिद्ध करना आवश्यक नही है कि ब्रिटिश-शासन अन्त मे ब्रिटिश कुशासन ही साबित हुआ है। मेरे लिए इतना कह देना ही काफी है कि चाहे कुशासन हो चाहे सुशासन, भारत तत्काल स्वाधीनता प्राप्त करने का अधिकारी है; भारत के करोड़ों बेजबानों की ओर से इसकी माँग की गई है।

जवाब मे यह कहना कोई जवाब नही है कि भारत में कुछ ऐसे भी

लोग हैं जो 'स्वाधीनता' और 'स्वतंत्रता' शब्दों तक से डरते हैं। हममें से, मैं कबूल करता हूं कि कुछ ऐसे हैं जो, यदि भारत से तथाकथित 'ब्रिटिश-संरक्षण' हटा लिया जाय तो भी भारत की स्वाधीनता के बारे में बात करने से डरेंगे। किन्तु मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि क्षुधापीड़ित लाखों भारतीयों और राजनीति समझनेवाले लोगों को ऐसा कोई भय नही है और वे स्वतंत्रता की कीमत चुकाने को तैयार हैं। किन्तु जबतक महासभा अपने वर्तमान कार्यकर्त्ताओं को नहीं बदलती और अपनी मौजूदा नीति मे उसकी श्रद्धा है, तबतक उसकी कुछ सुनिश्चित मर्यादाएं हैं। यदि दूसरों की जानें लेकर, शासकों का खून बहाकर भारत की आज़ादी प्राप्त की जाती हो तो हम आज़ादी नही चाहते। किन्तु उस आजादी की प्राप्ति के लिए राष्ट्र को हमे अगर कुर्बानी करने की आवश्यकता हुई तो आप देखेंगे कि हम भारत में अपने खून की गंगा बहा देने मे भी सकोच न करेंगे—उस स्वाधीनता के लिए जो हमें अबतक नही मिली है, हम यह सब करने को तैयार हैं। जैसा कि आपने मुझे याद दिलाया में यह जानता हूं कि मै आपके बीच मे अजनबी आदमी नहीं हूं, बल्कि आपका एक सहयोगी हूं। मैं जानता हूं कि आपकी ओर से मुझे यह पक्का विश्वास है कि जहाँ तक आपका और उनका, जिनका आप प्रतिनिधित्व करते हैं, सम्बन्ध है, आप हमारा साथ देंगे और भारतवर्ष को एक बार फिर यह बता देंगे कि आप आवश्यकता के समय काम आनेवाले मित्र हैं और इसलिए सच्चे मित्र हैं।

आपने जो मेरा बड़ा भारी स्वागत किया है, उसके लिए मैं आपको एक बार फिर धन्यवाद देता हूं। मै यह जानता हूं कि यह मेरा सम्मान नहीं है, आपने यह सम्मान उन सिद्धान्तों के प्रति प्रकट किया है, जो मैं आशा करता हूं मुझे और आप दोनों को ही प्रिय हैं। सम्भव है वे मुझसे भी आपको अधिक प्रिय हों। मुझे आशा है कि आपकी प्रार्थनाओं और आपके सहयोग के बल पर मैं उन सिद्धान्तों से कभी विमुख न होऊंगा, जिनकी मैं आज घोषणा कर रहा हूँ।

: ४ :

अल्पसंख्यक जातियां

प्रधान मन्त्री और मित्रो, बड़े खेद और उससे भी अधिक आत्म-ग्लानि के साथ मैं विभिन्न दलों के प्रतिनिधियों से खानगी बातचीत द्वारा साम्प्रदायिक प्रश्न का एक सर्वमान्य निपटारा करने में सर्वथा असफल होने की घोषणा करता हूँ। मैं आपसे और अन्य सहयोगियों से एक सप्ताह के बहुमूल्य समय को नष्ट करने के लिए क्षमा मांगता हूँ। मुझे संतोष इसी बात में है कि जब मैंने बातचीत का भार अपने ऊपर लिया था, तब मैं जानता था कि इसमें सफलता की अधिक आशा नहीं है। इसके अतिरिक्त मैं नहीं समझता कि इस समस्या को हल करने का कोई प्रयत्न मैंने बाकी रखा हो।

परन्तु यह कहना कि बातचीत बिलकुल असफल रही—जो कि हमारे लिए बड़ी लज्जा की बात है—सम्पूर्ण सत्य नहीं है। असफलता के कारण तो इस भारतीय प्रतिनिधि-मण्डल के संगठन में अन्तर्हित हैं। हममें से प्रायः सभी उन दलों या मंडलों के चुने हुए प्रतिनिधि नही हैं, जिनका प्रतिनिधि हमको समझा जाता है। हम सब यहां सरकार द्वारा नामज़द हो कर आये हैं। इसके अतिरिक्त यहां वे सज्जन भी नहीं हैं, जिनकी उपस्थिति इस प्रश्न के निपटारे के लिए नितान्त आवश्यक है। आप मुझे क्षमा करेंगे यदि मैं यह कह दूं कि अल्पसंख्यक समिति के अधिवेशन के लिए अभी उपयुक्त समय नही आया है। इसमें वास्तविकता का अभाव इस कारण है कि अभी हम यह भी नहीं जानते कि हमें क्या मिलने वाला है। यदि हमको निश्चित रूप से मालूम हो जाता कि जो हम चाहते हैं वह हमें मिलने वाला है तो हम ऐसी निकृष्ट खींचतान में उसे ठुकराने के पहले पचास बार आगा-पीछा सोचते, जैसा

कि हम तब करेगे जब हमे यह कह दिया जाय कि उसका मिलना वर्तमान प्रतिनिधियों की साम्प्रदायिक उलझन को सर्वमान्य रूप से सुलझाने की योग्यता पर निर्भर है। साम्प्रदायिक प्रश्न का निपटारा तो स्वराज्य-विधान की रचना के बाद ही हो सकता है, पहले नही; क्योंकि इस प्रश्न पर उत्पन्न हुआ हमारा मतभेद हमारी गुलामी के कारण अत्यन्त जटिल हो गया है, चाहे उसके कारण उत्पन्न न भी हुआ हो। मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नही है कि हमारा साम्प्रदायिक मतभेद-रूपी बर्फ का पहाड़ स्वतन्त्रतारूपी सूर्य के ताप मे पिघल जायगा।

इसलिए मै यह प्रस्ताव करने का साहस करता हूँ कि अल्पसख्यक समिति अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दी जाय और विधान की मौलिक बाते जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी तय कर ली जाय। इसी बीच मे साम्प्रदायिक समस्या को उचित रूप से हल करने के लिए खानगी प्रयत्न जारी रहेगा और जारी रहना चाहिए। केवल इस बात का ध्यान रहे कि वह विधान-रचना के कार्य मे बाधक न हो जाय। अत इस प्रश्न से हटा कर हमे अपना ध्यान विधान-रचना के मुख्य भाग पर केन्द्रीभूत करना चाहिए।

मै समिति को यह भी बतला दू कि मेरी असफलता से इस प्रश्न का सर्वमान्य निपटारा करने की आशाओ का अन्त नही हो गया है। मेरी असफलता का अर्थ यह भी नही है कि मेरी हार हो गई, क्योंकि हार जैसा शब्द तो मेरे शब्दकोश मे ही नही है। असफलता स्वीकार करने मे मेरा तात्पर्य केवल यही है कि जिस विशेष प्रयत्न के लिए मैंने एक सप्ताह का अवकाश मागा और जो आपने उदारतापूर्वक मुझे दिया, उसमे मै असफल रहा।

इस असफलता को मै सफलता की सीढ़ी बनाने का प्रयास करूँगा और लोगो से भी ऐसा ही करने के लिए अनुरोध करूँगा। परन्तु यदि गोलमेज़-परिषद् की समाप्ति तक भी निपटारे के हमारे सारे प्रयत्न असफल रहे तो मै भावी विधान मे एक ऐसी धारा जोड़ने की तजवीज़

पेश करूँगा, जिससे तमाम भागो की जांच करके अनिश्चित बातों पर अपना अन्तिम फैसला देने वाली एक कानूनी पचायत की नियुक्ति हो जाय ।

समिति को यह भी नही समझना चाहिए कि खानगी बातचीत के लिए दिया गया समय व्यर्थ ही नष्ट हुआ है । आपको यह जान कर हर्ष होगा कि बहुत से मित्र, जो प्रतिनिधि नही है, इस प्रश्न मे दिल–चस्पी ले रहे हैं । इन मित्रो मे सर जियोफ्रे कॉरबेट का नाम उल्लेख-नीय है । इन्होने पजाब के पुनर्विभाजन की योजना प्रस्तुत की है, जो मेरे विचार मे अध्ययन करने योग्य है, हालाकि वह सबको मान्य नही है । मैने सर जियोफ्रे से प्रार्थना की है कि वे अपनी योजना को विस्तारपूर्वक सब प्रतिनिधियो के सामने रखे । हमारे सिक्ख प्रतिनिधियों ने भी एक योजना बनाई है, जो विचार करने योग्य है । सर ह्यूबर्ट कार ने भी कल रात को एक ऐसी नूतन योजना का निर्माण किया है, जिसके अनुसार पजाब मे दो धारासभाए हो—छोटी मुसलमानो की मागो को सन्तुष्ट करने के लिए और बडी जिसमे सिक्खो की मागो को सन्तुष्ट किया जा सके । यद्यपि मै द्विखण्ड-धारासभा-प्रणाली से सहमत नही हूं, परन्तु सर ह्यूबर्ट की योजना ने मुझे काफी आकर्षित किया है । मैं उनसे भी प्रार्थना करूंगा कि वे उसको वैसे ही उत्साह के साथ बढाते रहे जैसे उत्साह के साथ उन्होने हमारी खानगी बातचीत मे योग दिया है जिसके लिए मै उनका अत्यन्त आभारी हूं ।

अन्त मे मै महासभा के विचार आपके सामने स्पष्टतया रख देना आवश्यक समझता हूँ; क्योंकि मेरा इन मन्त्रणाओं मे भाग लेने का एक मात्र कारण यही है कि मै उसका प्रतिनिधि हूँ । यद्यपि लोगो को, खास कर इग्लैण्ड मे, ऐसा प्रतीत न होता हो, परन्तु महासभा सम्पूर्ण राष्ट्र की प्रतिनिधि होने का दावा करती है और निश्चय ही वह ऐसी मूक जनता की प्रतिनिधि है, जिसमे अगणित अछूत, जो दलित होने की

अपेक्षा दबाये हुए अधिक हैं—और उनसे भी अधिक हतभाग्य तथा उपेक्षित अवनत जातियां भी शामिल हैं।

महासभा की निश्चत नीति सक्षेप में यह हैं। मैं महासभा का प्रस्ताव आपको पढ़कर सुनाता हूँ।

महासभा ने शुरू से ही विशुद्ध राष्ट्रीयता को अपना आदर्श माना है और वह साम्प्रदायिक भेदभावों को हटाने में प्रयत्नशील रही है। लाहौर-महासभा में पास किया हुआ निम्नलिखित प्रस्ताव उसकी राष्ट्रीयता का सर्वोच्च परिचायक है।

"चूकि नेहरू-रिपोर्ट रद्द हो चुकी है, कौमी सवालों के बारे में महासभा की नीति की घोषणा करना अनावश्यक है, क्योकि महासभा का विश्वास है कि स्वतन्त्र भारत मे कौमी सवालों का हल सिर्फ विशुद्ध राष्ट्रीय ढंग से ही किया जा सकता है। लेकिन चूकि खास कर सिक्खो ने और साधारणतया मुसलमानो तथा दूसरी अल्पसख्यक क़ौमों ने नेहरू-रिपोर्ट मे प्रस्तावित कौमी सवालों के हल के प्रति असन्तोष व्यक्त किया है, यह महासभा सिक्खो, मुसलमानो और दूसरी अल्पसख्यक क़ौमो को विश्वास दिलाती है कि इस सवाल का कोई भी ऐसा हल भावी शासन-विधान के लिए महासभा को तबतक मजूर न होगा, जबतक कि उसके सम्बन्धित दलों को पूरा सन्तोष न होता हो।

"इसी कारण कौमी सवाल का कौमी हल पेश करने की ज़िम्मेदारी से महासभा बरी हो गई है। लेकिन राष्ट्र के इतिहास के इस नाजुक अवसर पर यह अनुभव किया गया कि कार्य-समिति को देश की स्वीकृति के लिए एक ऐसा हल सुझाना चाहिए, जो देखने मे कौमी होते हुए भी राष्ट्रीयता के अधिक-से-अधिक निकट हो और आम तौर पर उन सब क़ौमों को मंजूर हो, जिनका इससे सम्बन्ध है। इसलिए पूरी-पूरी और निर्बाध वहस के बाद कार्यसमिति ने सर्वसम्मति से नीचे लिखी योजना पास की है—

"१. (अ) विधान की मौलिक अधिकार से सम्बन्धित धारा में उन-

उन क़ौमों के लिए यह आश्वासन भी शामिल हो कि उनकी संस्कृति, भाषा, धर्मग्रन्थ, शिक्षा, पेशा और धार्मिक व्यवहार तथा धार्मिक इनाम या जागीर वगैरा की रक्षा की जायगी।

" (ब) विधान मे खास शर्ते शामिल करके उनके द्वारा व्यक्तिगत क़ानूनों की रक्षा की जायगी।

" (स) विभिन्न प्रान्तों में अल्पसंख्यक जातियों के राजनैतिक और दूसरे हक़ों की रक्षा करना सघ-शासन का दायित्व होगा और यह काम उनके अधिकार-क्षेत्र की सीमा के अन्दर होगा।

"२. तमाम बालिग स्त्री-पुरुष मताधिकार के अधिकारी होंगे।

नोट—कराची-महासभा के प्रस्ताव द्वारा कार्यसमिति बालिग़ मताधिकार के लिए बध चुकी है, अतः वह किसी दूसरे प्रकार के मताधिकार को स्वीकार नही कर सकती। लेकिन कुछ स्थानों में जो गलतफ़हमा फैली हुई है, उसे ध्यान मे रखते हुए समिति यह स्पष्ट कर देना चाहती है, किसी भी हालत मे मताधिकार एक समान होगा और इतना व्यापक होगा कि चुनाव की सूची मे प्रत्येक क़ौम की आबादी का अनुपात उसमें स्पष्ट दिखाई पडे।

"३. (अ) हिन्दुस्तान के भावी शासन-विधान मे प्रतिनिधित्व का आधार सयुक्त निर्वाचन होगा।

"(ब) सिन्ध के हिन्दुओं, आसाम के मुसलमानों और सरहदी सूबे तथा पजाब के सिक्खो और किसी भी प्रान्त के हिन्दू और मुसलमानों के लिए, जहां उनकी सख्या आबादी का फी सैकड़ा २५ से कम है, सघीय और प्रान्तीय धारासभाओं मे आबादी के आधार पर स्थान सुरक्षित रक्खे जायँगे और उन्हें अधिक स्थानों के लिए उम्मीदवार के रूप में खड़े होने का अधिकार होगा।

"४. निष्पक्ष लोकसेवा कमीशनों द्वारा नियुक्तियां की जायँगी, ये कमीशन सेवकों की कम-से-कम योग्यता निश्चित करेंगे और लोक-सेवा की कार्यक्षमता का तथा देश की सार्वजनिक नौकरियों में तमाम क़ौमों

को समान अवसर और पर्याप्त भाग देने के सिद्धान्त का पूरा ख़याल रखेंगे।

"५. संघीय और प्रान्तीय मन्त्रि-मण्डल के निर्माण में अल्पसंख्यक जातियों के हित प्रचलित रूढि के अनुसार मान्य होंगे।

"६. सरहदी सूबे और बलूचिस्तान मे उसी प्रकार का शासन और व्यवस्था होगी, जैसी अन्य प्रान्तो मे हो।

"७. सिन्ध को अलग प्रान्त बना दिया जाय, बशर्ते कि सिन्ध के लोग पृथक् प्रान्त का आर्थिक भार वहन करने को तैयार हो।

"८. देश का भावी शासन-विधान संघीय होगा। शेष अधिकार संघीय इकाइयों (Federating Units) के हिस्से रहेगे, बशर्ते कि अधिक परीक्षा करने पर यह हिन्दुस्तान के अधिक-से-अधिक हित के प्रतिकूल सिद्ध न हो।

"कार्यसमिति ने उक्त योजना को विशुद्ध सम्प्रदायवाद और विशुद्ध राष्ट्रवाद के आधार पर किये गये प्रस्तावों के बीच समझौते के रूप मे स्वीकार किया है। इसलिए जहा एक ओर कार्यसमिति यह आशा रखती है कि सारा राष्ट्र इस योजना का समर्थन करेगा, वहा दूसरी ओर अतिवादी लोगों को, जो इसे कबूल नहीं कर सकते यह विश्वास दिलाती है कि समिति सहर्ष दूसरी किसी भी ऐसी योजना को बिना किसी हिचक के स्वीकार करेगी जैसी कि वह लाहौर वाले प्रस्ताव से बंधी हुई है, जो तमाम सम्बन्धित दलों को स्वीकृत होगी।"

यह महासभा का प्रस्ताव है।

अब यदि राष्ट्रीय निपटारा असभव हो और महासभा की योजना अस्वीकृत हो तो मुझे इस बात की स्वतन्त्रता है कि मै ऐसी अन्य न्यायोचित योजना से सहमत हो जाऊँ, जो सब जातियो को मान्य हो। इस सम्बन्ध मे महासभा की नीति अधिक-से-अधिक समझौताशील है; और कम-से-कम जहां वह सहायता नही कर सकेगी, वहां वह रोड़े भी

नही अटकायगी। यह कहने की आवश्यकता नही है कि आपसी पचायत की किसी भी योजना का महासभा पूर्णतया समर्थन करेगी।

मेरे लिए ऐसा कहा गया प्रतीत होता है कि मै अछूतों को धारा-सभाओं मे स्थान देने के विरुद्ध हूँ। यह सत्य का गला घोंटना है। जो कुछ मैंने कहा है और जो मै फिर दोहराता हूँ वह यह कि मैं उनका विशेष प्रतिनिधित्व देने के पक्ष मे नही हूँ। मुझे विश्वास है कि इससे उनका कोई भला नही हो सकता, उल्टा नुकसान ही होगा। महासभा बालिग मताधिकार स्वीकार कर चुकी है, जिसमे करोड़ों अछूत मतदाता हो सकते हैं। यह असभव मालूम होता है कि जब छूआछूत दूर होती जा रही है तब इन मतदाताओ के नामजद प्रतिनिधियों का दूसरे बहिष्कार कर देगे। धारासभाओ मे चुनाव से अधिक जिस बात की इनको आवश्यकता है वह है सामाजिक तथा धार्मिक अत्याचारो मे रक्षा। कानून से भी अधिक शक्तिशाली रूढियों ने उनको इतना नीचा गिरा दिया है कि प्रत्येक विचारवान हिन्दू को उससे लज्जित हो कर प्रायश्चित करना चाहिए। अतएव मै ऐसे कठोर कानून के पक्ष में हूँ, जो मेरे इन देश भाइयों पर उच्च कहलाने वाली जातियों द्वारा किये जाने वाले तमाम अत्याचारों को जुर्म करार दे। परमात्मा का धन्यवाद है कि हिन्दुओं की भावनाओ मे परिवर्तन हो रहा है और अल्प-काल ही मे छूआछूत हमारे पाप-पूर्ण भूतकाल का एक अवशिष्ट चिह्न मात्र रह जायगी।

: ५ :

संघ-न्यायालय

लार्ड चान्सलर तथा साथी प्रतिनिधिगण, मुझे इस विषय पर, जिसे इस वाद विवाद ने बड़ा पारिभाषिक बना दिया है, बोलने में बहुत हिच-किचाहट मालूम हो रही है; परन्तु मैं अनुभव करता हूं कि मेरा आपके तथा जिस महासभा का मैं प्रतिनिधि हूं उसके प्रति एक कर्त्तव्य है। मैं

जानता हूँ कि महासभा की संघ-न्यायालय के प्रश्न पर एक निश्चित नीति है, जो मुझे भय है कि यहा अनेक प्रतिनिधियों को अप्रिय मालूम होगी। कुछ भी हो, वह एक जिम्मेदार संस्था की नीति है इसलिए मेरे विचार मे यह आवश्यक है कि मैं उसे आपके सामने रख दूं।

मैं देखता हूँ कि इन वादविवादों का आधार यदि पूर्ण अविश्वास नही तो बहुत कुछ हमारा स्वयं अपने ही में यह अविश्वास है कि राष्ट्रीय सरकार अपनी कार्रवाही निष्पक्ष रूप से नही कर सकेगी। सांप्रदायिक उलझन भी इसे प्रभावित कर रही है। दूसरी ओर महासभा अपनी नीति का आधार श्रद्धा तथा इस विश्वास को मानती है कि जब हमें अधिकार मिलेगे तब हमे अपनी जिम्मेदारियों का भी ज्ञान हो जायगा और साम्प्रदायिक मतभेद अपने आप मिट जायगा। परन्तु यदि ऐसा न भी हो तो भी महासभा बडे-से-बडा खतरा उठा लेगी; क्योंकि ऐसे खतरे उठाये बिना हम वास्तविक उत्तरदायित्व को सभालने के योग्य न हो सकेंगे। जबतक हमारे दिमाग मे यह भाव बना रहेगा कि हमें सलाह के लिए तथा नाजुक परिस्थिति मे अपना काम चलाने के लिए किसी बाहरी शक्ति के सहारे रहना है, तबतक मेरी राय मे हमपर कोई ज़िम्मेदारी नही है।

यह बात भी उलझन में डालने वाली है कि हम बिना यह जाने कि हमारा ध्येय क्या है, इस विषय पर बहस करने का प्रयत्न कर रहे हैं। यदि फ़ौजें स्वराज्य सरकार के मातहत नही रहें तो मैं एक राय दूगा; परन्तु यदि वे हमारे ही अधिकार मे रहें तो मेरी राय दूसरी होगी। मैं इस आधार पर चल रहा हूं कि यदि हमें वास्तविक ज़िम्मेदारी मिलने वाली हो तो फ़ौजों पर हमारा, अर्थात् सच पूछिए तो राष्ट्रीय अधिकार रहेगा। डा० अम्बेदकर ने जो कठिनाई उपस्थित की है, उसमें उनके साथ मेरी भी पूर्ण सहानुभूति है। सबसे ऊंची अदालत का फैसला लेना बड़ी अच्छी बात है; परन्तु यदि उस अदालत की आज्ञाएं स्वयं उसीकी कचहरी के बाहर कोई वक़त न रखती हों तो ऐसी अदालत

पर सारा राष्ट्र और सारा संसार हंसेगा। फिर उस आज्ञा का क्या होगा ? श्री जिन्ना ने जो कहा, वह मेरी समझ में आ गया कि इस कार्य के लिए सैनिक शक्ति होगी; परन्तु उस हालत में आज्ञा का पालन कराने वाला तो सम्राट् (Crown) होगा। तब मैं कहूंगा कि हाइकोर्ट अथवा संघ-न्यायालय सम्राट् के ही अधीन रहें। मेरे विचार से यदि हमें ज़िम्मेदार बनना है तो सर्वोच्च न्यायालय को स्वराज्य-सरकार के ही मातहत रहना पड़ेगा और उसकी आज्ञाओं को अमल में लाने का काम भी उसे ही—स्वराज्य-सरकार को—ठीक करना पड़ेगा। डा० अम्बेदकर को जो भय है उससे मैं तो नही डरता हूँ; परन्तु मेरी समझ में उनकी आपत्ति अवश्य कुछ तथ्य रखती है; क्योकि जो अदालत न्याय करे उसे यह भी भरोसा होना चाहिए कि जिनपर उसके फैसलों का असर पड़ता है वे उनको मानेंगे। इसलिए मै राय दूगा कि न्यायाधीशों को यह भी अधिकार होना चाहिए कि वे फैसलों के सम्बन्ध की बातों को बाक़ायदा चलाने के लिए नियम भी बना सकें। ज़रूर ही उनका पालन करवाना अदालत के हाथ मे नहीं रहेगा; बल्कि कार्यकारिणी-विभाग के हाथों में रहेगा; परन्तु कार्यकारिणी-विभाग को इस अदालत के बनाये हुए नियमों के अनुसार ही कार्य करना होगा।

हम यह कल्पना करने लगे हैं कि यह विधान इस अदालत की रचना के सम्बन्ध की छोटी-से-छोटी बाते तक हमारे सामने रख देगा। मैं विनयपूर्वक इस विचार से अपना पूर्ण मतभेद ज़ाहिर करता हूँ। मेरे विचार से यह विधान हमें संघ-न्यायालय का ख़ाका बना देगा और उसका अधिकार-क्षेत्र निश्चित कर देगा; परन्तु बाकी तमाम बातें संघ-सरकार के ऊपर छोड़ दी जायगी कि वह उनको पूरा कर ले। मै इस बात को कभी खयाल मे नही ला सकता कि यह विधान इन बातों को भी तय कर देगा कि न्यायाधीशों को कितने साल नौकरी करना है, आया उनको ७० वर्ष की अथवा ६५ अथवा ६० अथवा ६४ वर्ष की अवस्था पर इस्तीफ़ा देना या रिटायर होना है; मेरी राय में तो

ये बातें संघ-शासन ही निश्चित करेगा। हम प्रत्येक वाक्य के अख़ीर मे सम्राट् (Crown) शब्द अवश्य ले आते हैं। मै यह मानता हूं कि महासभा के विचार से सम्राट् का कोई सवाल ही नही है। भारतवर्ष को तो पूर्ण स्वाधीनता का उपभोग करना है और यदि वह पूर्ण स्वाधीनता का उपभोग करने लगे तो जो कोई भी सर्वोच्च सत्ता होगी, वही न्यायाधीशो की नियुक्ति तथा आज जो सम्राट् के अधिकार की बाते हैं, उन सबकी जिम्मेवार होगी।

महासभा का यह मौलिक सिद्धान्त है कि विधान का रूप चाहे जैसा हो भारत मे हमारी अपनी प्रीवी-कौसिल होगी। प्रीवी-कौसिल वास्तव में सबसे अधिक महत्त्व की बातों मे, निर्धन लोगो की रक्षा तभी कर सकेगी, जब उसके फाटक दीनातिदीन जनो के लिए भी खुले रहेगे। और मेरे विचार मे यदि यहाँ की—इंग्लैण्ड की—प्रीवी-कौसिल महत्त्वपूर्ण विषयो मे हमारी क़िस्मत का फैसला करने वाली हो तो ऐसा होना असम्भव है। इस सम्बन्ध मे भी मै अपने यहां के न्यायाधीशों की बुद्धिमत्तापूर्ण तथा सर्वथा निष्पक्ष फ़ैसला देने की योग्यता मे पूर्ण विश्वास रखने की सलाह दूंगा। मै जानता हूं कि हम बड़ी जोखिम उठा रहे हैं। यहां की प्रीवी-कौसिल एक प्राचीन संस्था है जिसकी बडी प्रतिष्ठा तथा बडा मान है; परन्तु इस प्रीवी-कौंसिल के प्रति अपने आदर को स्वीकार करते हुए भी मै कभी यह विश्वास नही कर सकता कि हम अपनी निजी ऐसी प्रीवी-कौसिल न बना सकेगे जिसके गौरव को सारा ससार स्वीकार करे। इंग्लैण्ड को बड़ी सुचारु सस्थाओं का अभिमान हो सकता है; परन्तु इसका यह अर्थ नही है कि हम भी उन सस्थाओ मे बधे रहे। यदि हमे इंग्लैण्ड से कुछ सीखना है तो यही कि हम स्वय भी ऐसी सस्थाए स्थापित कर सके, वरना जिस राष्ट्र के हम प्रनिनिधि है उसकी उन्नति की कोई आशा नही है। इसलिए मैं आप सबसे प्रार्थना करूंगा कि इस समय हम अपने मे पूर्ण विश्वास रखे। हमारा प्रारभ भले

ही छोटा हो ; परन्तु यदि हमारे हृदयों मे सचाई और ईमानदारी के साथ फ़ैसला देने की शक्ति है तो फिर कोई परवाह नही, यदि हमारे देश मे इंग्लैण्ड के न्यायाधीशो-जैसी न्याय-परम्परा—जिसका उनको संसार में अभिमान है—न हो।

इस प्रकार मेरी राय मे इस सघ-न्यायालय को अधिक-से-अधिक अधिकार होने चाहिएं और वह केवल उन्ही मामलों का फैसला न करे, जिनका संघ-कानून (Federal Laws) से सम्बन्ध है। सघ-कानून ज़रूर रहेंगे; परन्तु उसको इतना अधिकार होना चाहिए कि भारत के किसी भी भाग में होने वाले मामलों पर वह फैसले दे सके।

अब यह प्रश्न है कि देशी नरेशों की प्रजा की क्या स्थिति रहेगी और उनका क्या होगा ? देशी नरेश जो कुछ कहें, उसको ध्यान में रखते हुए मै बड़े सम्मान तथा बडी हिचकिचाहट के साथ सलाह दूंगा कि यदि इस कान्फ्रेंस का कुछ फल निकले तो कोई बात ऐसी होनी चाहिए, जो सारे भारत के लिए तथा सारे भारतवासियों के लिए एक-सी हो, फिर चाहे वे रियासतों के रहने वाले हों या भारत के अन्य भागों के। यदि हम सबमें कोई समान बात है तो अवश्य ही सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court) को सबके समान अधिकारों की रक्षा करनी होगी। मैं नहीं कह सकता कि ये अधिकार क्या हो सकते हैं और क्या नही हो सकते। चूंकि देशी नरेश स्वयं अपनी श्रेणी के ही प्रतिनिधि बनकर नही आये हैं, बल्कि उन्होंने अपनी प्रजा के प्रतिनिधित्व की भी बड़ी भारी जिम्मेदारी अपने सिर पर ले रखी है, इसलिए मैं विनम्र तथा हार्दिक प्रार्थना करूंगा कि उनको स्वयं ही कोई ऐसी योजना बना देनी चाहिए, जिससे उनकी प्रजा को यह अनुभव हो कि यद्यपि इस परिषद् में उनका कोई प्रतिनिधि नहीं है, तो भी उनके विचार इन माननीय नरेशों के ही द्वारा भली प्रकार प्रकट किये जायंगे।

जहां तक तनख्वाहों का सवाल है, आप लोग शायद हंसेंगे, परन्तु महासभा का, जो एक ग़रीब राष्ट्र की प्रतिनिधि है, विश्वास है कि इस

सम्बन्ध मे हमारा-धन के लिहाज से एक दरिद्र राष्ट्र का—वर्तमान धनकुबेर इंग्लैण्ड से स्पर्द्धा करना असम्भव है। भारतवर्ष जिसकी औसत आय ३ पैसे प्रतिदिन है, वैसी तनख्वाहों को बर्दाश्त नही कर सकता जो यहा दी जाती हैं। मै समझता हूँ कि यदि हमे भारत मे स्वाधीनतापूर्वक राज्य करना है तो इस बात को भूल जाना पडेगा। जबतक अग्रेजी तलवार वहा मौजूद है, तबतक भले ही इन दीन मनुष्यों को निचोड कर १०,००० रु० या ५,००० रु० या २०,००० रु० मासिक तनख्वाहे दी जा सके। मै नही समझता कि मेरा देश इतना गिर गया है, जो करोडो भारतीयो के जैसा जीवन बिताते हुए भी भारत की सचाई के साथ सेवा करने वाले जन पर्याप्त सख्या मे उत्पन्न न कर सके। मै इस बात को स्वीकार नही कर सकता कि कानूनी योग्यता को ईमानदार रहने के लिए भारी कीमत देने की आवश्यकता है।

इसके मै लिए श्री मोतीलाल नेहरू, सी० आर० दास, मनमोहन घोष, बदरुद्दीन तय्यबजी इत्यादि की याद आपको दिलाता हूँ, जिन्होने अपनी कानूनी लियाकत बिलकुल मुफ्त बाटी और अपने देश की बडी अच्छी तथा विश्वस्त सेवा की। आप शायद मुझे ताना देगे कि वे लोग इस कारण ऐसा कर सके थे कि वे अपने व्यवसाय मे बडी लम्बी-लम्बी फीस लेते थे। मै इस तर्क को इस कारण नही मान सकता कि मनमोहन घोष के सिवा मेरा और सबसे परिचय रहा है। यह नही कहा जा सकता कि अधिक रुपये होने की वजह से इन लोगों ने भारत को आवश्यकता पडने पर अपनी योग्यता उदारतापूर्वक दी हो। उसका उनकी आराम तथा विलास से रहने की योग्यता से कोई सम्बन्ध नही है। मैंने उनको बड़े संतोष से दीनतापूर्वक जीवन निर्वाह करते देखा है। इस समय चाहे जो स्थिति हो, मैं अब भी आपको कई ऐसे प्रसिद्ध वकील बतला सकता हूँ, जो यदि राष्ट्रीय हितों के लिए आगे न बढे होते तो भारत के विभिन्न भागों मे हाईकोर्ट के न्यायाधीशों के आसन पर बैठे हुए होते। इसलिए मुझे पूर्ण विश्वास है कि जब हम अपने कानून स्वयं बनाने लगेंगे तो हम

देशभक्ति के भावों से प्रेरित होकर तथा भारत के करोड़ों निवासियों की दीन अवस्था को ध्यान में रखते हुए ऐसा करेंगे।

मैं एक बात और कह कर समाप्त करूंगा। यह ध्यान में रखते हुए चाहे जो नाम आप उसे दें, महासभा के विचार से यह संघ-न्यायलय या सर्वोच्च न्यायालय ऐसी ऊंची अदालत का स्थान ग्रहण करेगा, जिसके ऊपर भारत का कोई निवासी न जा सके। मेरी राय में उसका अधिकार-क्षेत्र भी अपरिमित होगा। संघीय बातों से जहां तक सम्बन्ध है, उसका अधिकार-क्षेत्र इतना ही विस्तृत होगा, जितने से देशी नरेश सहमत हो। परन्तु मैं यह ख्याल कभी नहीं कर सकता कि हमारे यहां दो सर्वोच्च न्यायालय रहें : एक तो केवल संघ-कानून की बातों के लिए और दूसरा अन्य सब बातों के लिए, जो संघ-शासन या संघ-सरकार के अन्तर्गत न आती हो।

इस समय जैसी बातें हो रही हैं उससे मालूम होता है कि संघ-सरकार कम-से-कम विषयों से ताल्लुक रक्खेगी और अधिक महत्वपूर्ण बातें संघ-शासन से बाहर ही रहेंगी। इन संघ की बातों पर यदि सर्वोच्च न्यायालय फैसला नहीं देगा तो और कौन देगा ? इसलिए इस सर्वोच्च न्यायालय का दोहरा अधिकार होगा और यदि आवश्यकता हो तो तिहरा अधिकार होगा। जितनी अधिक शक्ति हम इस संघ-न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय को देंगे, उतने ही अधिक विश्वास का संचार हम संसार में तथा स्वयं अपने राष्ट्र में कर सकेंगे।

मुझे खेद है कि मैंने परिषद् के समय की यह बहुमूल्य घड़ियां ली हैं ; परन्तु मैंने अनुभव किया कि संघ-न्यायालय के प्रश्न पर बोलने की अनिच्छा रखते हुए भी मैं उन विचारों को आपके सामने रख दूं जो महासभावादी वर्षों से रखते चले आये हैं और जिनको हम भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक यदि फैला सकें तो फैलाना चाहते हैं। मैं जानता हूं कि मुझे किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। लगभग सारे प्रसिद्ध वकील मेरे खिलाफ हैं और जहां तक इस न्यायालय

की तनख्वाहों तथा इसके अधिकार का सवाल है वहा तक शायद नरेश भी मेरे विरोधी हैं। परन्तु यदि मै संघ-न्यायालय-सम्बन्धी महासभा के तथा अपने विचारों को, जिनका हम जोरों से प्रतिपादन करते हैं, आपके सामने न रक्खूं तो अपने कर्तव्य से गिरने का दोषी होऊंगा।

: ६ :

जनतन्त्र की हत्या

प्रधानमंत्री तथा प्रतिनिधि-बन्धुओ, मै अत्यधिक सकोच और लज्जा के साथ अल्पसंख्यक जातियो के प्रश्न की चर्चा मे भाग ले रहा हूँ। कुछ अल्पसंख्यक जातियों की ओर से प्रतिनिधियो के पास भेजे हुए और आज सुबह ही मिले हुए आवेदनपत्र (Memorandum) को मै उचित ध्यान और एकाग्रता से नही पढ़ सका हूँ। इसके पहले कि उक्त आवेदन-पत्र के सम्बन्ध मे मै कुछ शब्द कहूँ, मै अत्यन्त आदर और सम्मान के साथ, आपकी आज्ञा से, आपकी इस समिति के सामने पेश किये गये इस विचार के साथ कि जातिगत प्रश्न को हल करने की असमर्थता के कारण विधान-रचना के कार्य की प्रगति रुक रही है और ऐसा कोई विधान बनाये जाने के पहले इस प्रश्न का हल हो जाना एक अनिवार्य शर्त है, अपना मतभेद प्रकट करना चाहता हूँ। इस समिति की बैठक के आरम्भ में ही मैने कह दिया था कि मैं इस विचार से सहमत नही हूँ। उसके बाद अबतक मुझे जो अनुभव प्राप्त हुआ है, उससे मेरा यह विचार और दृढ़ हो गया है, और आप मुझे यह कहने के लिए क्षमा करेंगे कि गत वर्ष इस कठिनाई के सम्बन्ध में आपने जो जोर दिया और इस वर्ष फिर उसे दुहराया, उसीका यह कारण है कि विभिन्न जातियों को अपने पूरे बल के साथ अपनी-अपनी मांग को रखने का उत्तेजन

मिला। यदि उन्होंने इसके विपरीत किया होता तो वह मनुष्य-स्वभाव के विरुद्ध होता। सबने यही सोचा कि अपनी मांगे चाहे जैसी हो, उन-पर पूरा-पूरा आग्रह करने का यही समय है, और मै इस बात को फिर दुहराने का साहस करता हूँ कि मुझे इसमे कोई सन्देह नही है कि आपके इस प्रश्न पर दिये गये जोर के ही कारण इसका उद्देश्य विफल हो गया है। यह उत्तेजन मिलने के कारण ही हम किसी समझौते पर न आ सके। इसलिए सर चिमनलाल सीतलवाद के इस विचार के साथ मै पूर्णतः सहमत हूँ कि यही प्रश्न कोई आधाररूप नही है, यही प्रश्न मध्यबिन्दु नही है, प्रत्युत मध्यबिन्दु तो है विधान-रचना।

मुझे पूरा विश्वास है कि आपने इस गोलमेज-परिषद् को तथा हम लोगों को, यहा ६,००० मील दूर से अपना घर और कामकाज छुडाकर साम्प्रदायिक अथवा जातिगत प्रश्न हल करने के लिए नही बुलाया है बल्कि आपने हमे एकत्र किया—आपने जानबूझकर यह घोषित किया कि हम लोग यहा निमंत्रित किये गये है—विधान-रचना की क्रिया मे भाग लेने के लिए और आपने यह भी घोषित किया है कि आपके आतिथ्य-शील देश को छोड़ने के पहले हमे इस बात का निश्चय हो जायगा कि भारत की स्वतन्त्रता के लिए हम सम्मान और प्रतिष्ठायुक्त ढांचा तैयार कर चुके हैं और अब उसपर केवल 'हाउस आव कामन्स' और 'हाउस आव लार्ड्स' की सम्मति मिलना ही शेष रह गया है।

किन्तु इस समय एक सर्वथा जुदी परिस्थिति का हमे सामना करना पड़ रहा है और वह यह कि चूकि हम किसी जातिगत समझौते पर नहीं आ सके, इसलिए विधान-रचना का कुछ काम नही होगा, और अन्तिम उपाय की तरह विधान और उससे उद्भावित सब बातों के सम्बन्ध में सम्राट्-सरकार की नीति को आप घोषित कर देंगे। मैं यह महसूस किये बिना नहीं रह सकता कि जो परिषद् इतने होहल्ले के साथ और इतने अधिक लोगों के मन और हृदय में आशा उत्पन्न करके की गई थी, उसका यह दु:खद अन्त होगा।

इस आवेदन-पत्र* पर आते हुए, सर ह्यूबर्ट कार ने मुझे जो धन्यवाद दिया है वह मै स्वीकार करता हूँ। उनका यह कहना ठीक है कि इस बोझ को अपने कधों पर उठाते समय मैंने जो शब्द कहे थे, यदि वे न कहे होते और किसी प्रकार का समझौता करने मे मैं सर्वथा असफल न हुआ होता, तो वे अन्य अल्पसख्यक जातियो के साथ मिलकर इस समिति के विचार और अन्त मे सम्राट्-सरकार की स्वीकृति के लिए जो अत्यन्त सराहनीय योजना पेश कर सके हैं, वह न कर सकते।

सर ह्यूबर्ट कार तथा उनके साथियों को इससे वस्तुतः जो सन्तोष हुआ है, वह मै उनसे न छीनूगा; किन्तु मेरे विचार मे उन्होने जो कुछ किया है, वह ऐसा ही है जैसा कि मुर्दे के पास बैठना और उसकी लाश की चीरफाड़ करने का भारी पराक्रम करना।

भारत की सबसे बड़ी और प्रधान राजनैतिक सस्था के प्रतिनिधि की हैसियत से सम्राट्-सरकार से, उन मित्रो से जो अपने नाम के सामने दी गई छोटी-छोटी जातियों के प्रतिनिधि बनना चाहते हैं, और अवश्य ही सारे संसार से, मै बिना किसी हिचकिचाहट के यह कह देना चाहता हूं कि इसमे कोई सन्देह नही कि यह योजना उत्तरदायित्व-पूर्ण शासन अर्थात् स्वराज्य-प्राप्ति के लिए नही है, प्रत्युत नौकरशाही की सत्ता मे भाग लेने के लिए बनाई गई है।

यदि यही इरादा हो—और सारे आवेदन-पत्र मे यही इरादा व्याप्त है—तो मै उनकी सफलता चाहता हूँ; परन्तु राष्ट्रीय महासभा उससे साफ अलग हो जाती है। किसी ऐसे प्रस्ताव या योजना पर, जिससे

*छोटी अल्पसंख्यक जातियों और मुसलमानों में परस्पर-स्वीकृत कथित योजना। ह्यूबर्ट कार ने अपने भाषण में, गांधीजी को उक्त प्रश्न के निपटारे की असफलता के लिए कटाक्षपूर्वक धन्यवाद दिया था, क्योंकि उनके (सर ह्यूबर्ट के) मत से उनकी इस असफलता के परिणाम-स्वरूप ही अल्पसंख्यक जातियां आपस में मिल सकीं।

कि खुनी हवा में उगने वाला स्वतन्त्रता और स्वराज्य का वृक्ष कभी उग न सकता हो, अपनी सहमति प्रकट करने की अपेक्षा महासभा चाहे जितने वर्ष जंगल में भटकना स्वीकार कर लेगी।

मुझे यह सुनकर आश्चर्य होता है कि सर ह्यूबर्ट कार हमें बताते हैं कि उन्होंने जो योजना तैयार की है, वह केवल कुछ ही दिनों के लिए, अस्थाई अथवा कामचलाऊ, होने के कारण हमारे राष्ट्र-हित के लिए हानिकर न होगी, प्रत्युत दस वर्ष के अन्त मे हम सब एक-दूसरे से मिलते और आपस मे आलिंगन करते दिखाई देगे। मेरा राजनैतिक अनुभव इससे सर्वथा विरुद्ध बात सिखाता है। यदि इस उत्तरदायित्वपूर्ण शासन का, जब भी कभी वह आवे, शुभ मुहूर्त मे आरम्भ करना हो तो जैसा कि इस योजना से होता है, उसकी चीरफाड़ न होनी चाहिए; जो ऐसी चीरफाड़ है, जिसे कोई राष्ट्रीय सरकार सह नही सकती।

पर इस योजना की चौका देने वाली बात तो यह है और प्रधान मन्त्री महोदय ! मुझे आश्चर्य है कि स्वयं आपने भी इस बात का उल्लेख इस भांति किया है मानो यह बात निर्विवाद तथ्य है कि यह योजना ११।। करोड़ लोगों को अथवा भारत की आबादी के लगभग ४६ प्रतिशत को मान्य है। ये अक बहुत गलत हैं, इसका आपको जीता-जागता प्रमाण मिल चुका है। स्त्रियों की ओर से विशेष प्रतिनिधित्व की मांग से सर्वथा असहमति आप सुन चुके हैं। और स्त्रियां भारत की आबादी का आधा हिस्सा हैं, इसलिए इस ४६ प्रतिशत में कुछ कमी हो जाती है। किन्तु इतना ही नही है। महासभा नगण्य संस्था हो सकती है; किन्तु मैंने बिना किसी हिचकिचाहट के यह दावा किया है, और बिना किसी शर्म के उसे फिर दुहराता हूँ कि महासभा केवल ब्रिटिश भारत की नही, प्रत्युत सम्पूर्ण भारत की आबादी के ८५ अथवा ९५ प्रतिशत की प्रतिनिधि होने का दावा करती है।

इसपर चाहे जितने प्रश्न खडे किये जाने पर भी मै अपने पूरे बल के साथ इस दावे को दुहराता हूँ कि महासभा अपनी सेवा के अधिकार से भारत के किसान कहे जाने वाले वर्ग की प्रतिनिधि है। यदि सरकार चुनौती देकर कहे कि भारत मे लोकमत की गिनती की जाय तो मैं उस चनौती को स्वीकार कर लूगा, और तब आप तुरन्त ही देख लेंगे कि महासभा इनकी प्रतिनिधि है या नही। लेकिन मै एक क़दम और आगे जाता हूं। इस समय यदि आप भारत की जेलों के रजिस्टरों की जाच करे तो आपको मालूम होगा कि इन रजिस्टरों में महासभा मुसलमानों की बहुत बड़ी सख्या की प्रतिनिधि थी और है। गत वर्ष महासभा के झण्डे के नीचे हजारो मुसलमान जेल गये थे। आज भी महासभा के रजिस्टर पर कई हज़ार मुसलमान और इसी तरह कई हजार अछूत और कई हजार भारतीय ईसाई उसके सदस्य है। मै नही जानता कि कोई भी ऐसी जाति है जो महासभा की सदस्य न हो। नवाब साहब छतारी के प्रति पूर्ण सम्मान प्रकट करते हुए मैं कहना चाहता हूं कि ज़मीदार, मिलमालिक और लखपति तक उसके सदस्य हैं। मै स्वीकार करता हूँ कि वे धीरे-धीरे और सावधानी से महासभा की ओर आ रहे हैं, किन्तु महासभा उनकी सेवा करने का भी प्रयत्न करती है। निःसन्देह महासभा मज़दूरों की भी प्रतिनिधि है हीं। इसलिए यह जो कहा जाता है कि इस आवेदन-पत्र मे निर्धारित सूचनाएं ११॥ करोड़ से अधिक लोगों को स्वीकृत होंगी, उसे बहुत अधिक मर्यादा और सावधानी के साथ स्वीकार करना चाहिए।

एक शब्द और कह कर मैं इसे समाप्त करूंगा मुझे आशा है कि साम्प्रदायिक समस्या की जो योजना महासभा ने तैयार की है, वह आपके सामने आ चुकी है और सदस्यों में वितरित कर दी गई है। मैं साहसपूर्वक कह सकता हूँ कि इस सम्बन्ध मे मैने जितनी योजनायें देखी हैं, उन सबमे वह अत्यधिक व्यावहारिक योजना है। किन्तु मैं इसमें भूल भी कर सकता हूँ। मैं स्वीकार करता हूँ कि इस मेज़ के सामने बैठे

हुए अपनी-अपनी जाति के प्रतिनिधियों को यह योजना पसन्द नही है; किन्तु भारत मे इन्ही जातियों के प्रतिनिधि उसे स्वीकार कर चुके हैं। यह केवल एक ही दिमाग की उपज नही, प्रत्युत एक समिति की कृति है, जिसमे कई महत्वपूर्ण दलों के प्रतिनिधि थे। इसलिए महासभा की ओर से आपके पास यह योजना है; किन्तु महासभा ने यह भी सूचना की है कि इस प्रश्न के निर्णय के लिए एक निष्पक्ष पचायत की आवश्यकता है। पंचायत के द्वारा सारे ससार मे अदालत ने अपने मतभेद मिटाये हैं, और महासभा भी पंचायती अदालत के किसी भी निर्णय को स्वीकार करने के लिए हमेशा तैयार है। मैंने स्वय यह सूचित करने का साहस किया है कि सरकार एक न्याय-मण्डल नियुक्त करे, जो इस मामले की जाच कर उसपर अपना निर्णय दे। परन्तु इन बातों मे से किसी को कोई भी बात स्वीकृत न हो, और यदि इसी शर्त पर विधान-रचना होती हो तो मैं कहूँगा कि सर ह्यूबर्ट कार तथा अन्य सदस्यों द्वारा पेश की गई इस योजना को स्वीकार करने की अपेक्षा इस उत्तरदायी शासन नामधारी शासन से दूर रहना ही हमारे लिए कही अधिक अच्छा है।

मैंने पहले जो कहा है, उसीको फिर दुहराता हू कि महासभा कोई भी ऐसी योजना, जो हिन्दू, मुसलमान और सिक्खो को स्वीकृत होगी, स्वीकृत करने के लिए सदैव तैयार रहेगी; किन्तु अन्य अल्पसख्यक जातियों के विशेष प्रतिनिधित्व अथवा विशेष निर्वाचन-मण्डल की योजना का वह कभी समर्थन न करेगी। मौलिक अधिकार और नागरिक स्वतन्त्रता-सम्बन्धी विशेष धाराओ अथवा सरक्षणों को महासभा सदैव स्वीकृत करेगी। निर्वाचको की सूची मे दाखिल होकर सर्वमान्य निर्वाचक मण्डल से मत मांगने का सबके लिए खुला अधिकार होगा। मेरी नम्र सम्मति के अनुसार सर ह्यूबर्ट कार की योजना उत्तरदायित्वपूर्ण शासन एवं राष्ट्रीयता के मूल पर ही आघात करने वाली है। यदि भारत को इस प्रकार काट-काट कर जुदे किये हुए अनेक वर्गों के प्रतिनिधि मिलने वाले हों तो उस भारत की क्या दशा होगी यह भगवान ही जाने ! वह और

केवल वही अग्रेज सम्पूर्ण भारत की सेवा कर सकेगा, जो केवल अंग्रेजों द्वारा नही, प्रत्युत सर्वमान्य निर्वाचक मण्डल द्वारा निर्वाचित होगा। स्वयं इस विचार से ही प्रकट होता है कि उत्तरदायी शासन को सदैव राष्ट्रीय भावना के—आबादी के ८५ प्रतिशत किसानों के—हितविरोधी इस वर्ग के साथ लड़ना होगा। मै तो इस बात की कल्पना भी नही कर सकता। यदि हम उत्तरदायी शासन की स्थापना करना चाहते हों और यदि हम वास्तविक स्वतन्त्रता प्राप्त करने वाले हों तो मै यह सूचित करने का साहस करता हूँ कि इन कथित विशेष वर्गों के प्रत्येक व्यक्ति का यह गौरवपूर्ण अधिकार और कर्तव्य होना चाहिए कि वह सर्वमान्य निर्वाचक की सम्मति और निर्वाचन के खुले द्वार से व्यवस्थापिका मे प्रवेश करे। आप जानते हैं कि महासभा बालिग मताधिकार से बंधी हुई है और इस बालिग मताधिकार के कारण सबके लिए निर्वाचक सूची मे दाखिल होने का मार्ग खुला रहेगा। कोई भी व्यक्ति इससे अधिक नही माग सकता।

अन्य अल्पसख्यक जातियो के दावे को मै समझ सकता हूँ; किन्तु अछूतों की ओर से पेश किया गया दावा तो मेरे लिए 'सबसे अधिक निर्दय घाव' है। इसका अर्थ यह हुआ कि अस्पृश्यता का कलंक सदैव के लिए कायम रहने वाला है। भारत की स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए भी मैं अछूतों के वास्तविक हित को न बेचूगा। मैं स्वय अछूतों के विशाल समुदाय का प्रतिनिधि होने का दावा करता हूँ। यहां मै केवल महासभा की ओर से ही नही बोलता, प्रत्युत स्वय अपनी ओर से भी बोलता हूँ और दावे के साथ कहता हूँ कि यदि सब अछूतों का मत लिया जाय तो मुझे उनके मत मिलेगे और मेरा नम्बर सबके ऊपर होगा। मैं भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक दौरा करके अछूतों से कहूँगा कि अस्पृश्यता जो कि उनका नही प्रत्युत कट्टर एवं रूढ़िवादी हिन्दुओं का कलंक है, दूर करने का उपाय पृथक निर्वाचक मण्डल अथवा व्यवस्थापिका-सभाओं में विशेष रक्षित स्थान नही है। इस समिति को और समस्त संसार को

यह जान लेना चाहिए कि आज हिन्दू समाज-सुधारको का ऐसा समूह मौजूद है जो कि अस्पृश्यता के इस कलक को धोने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध है। हम नही चाहते कि हमारे रजिस्टरों मे और हमारी मर्दुमशुमारी में अछूत नाम की जुदी जाति लिखी जाय। सिक्ख सदैव के लिए सिक्ख, मुसलमान हमेशा के लिए मुसलमान और अंग्रेज सदा के लिए अंग्रेज रह सकते हैं। किन्तु क्या अछूत भी हमेशा के लिए अछूत रहेगे ? अस्पृश्यता जीवित रहे, इसकी अपेक्षा मै यह अधिक अच्छा समझूंगा कि हिन्दू धर्म डूब जाय। इसलिए डा० अम्बेदकर की अछूतो को ऊचा उठा देखने की उनकी इच्छा तथा योग्यता के प्रति अपना पूरा सम्मान प्रकट करते हुए भी मैं अत्यन्त नम्रतापूर्वक कहूंगा कि उन्होंने जो कुछ किया है, अत्यन्त भूल अथवा भ्रम के वश में होकर किया है और कदाचित् उन्हे जो कटु अनुभव हुए होंगे, उनके कारण उनकी विवेक-शक्ति पर पर्दा पड़ गया है। मुझे यह कहना पडता है, इसका मुझे दुःख है; किन्तु यदि मै यह न कहूँ तो अछूतों का हित जो मेरे लिए प्राणो के समान है, उसके प्रति मैं सच्चा न होऊंगा। सारे संसार के राज्य के बदले भी मै उनके अधिकारों को न छोड़ूंगा। मै अपने उत्तरदायित्व का पूरा ध्यान रखता हूँ, जब मैं कहता हूँ कि डा० अम्बेदकर जब सारे भारत के अछूतो के नाम पर बोलना चाहते हैं, तब उनका यह दावा उचित नही है। इससे हिन्दू धर्म में जो विभाग हो जायंगे वह मै जरा भी सन्तोष के साथ देख नहीं सकता। अछूत यदि मुसलमान अथवा ईसाई हो जायं, तो मुझे उसकी कुछ परवा नहीं; मैं वह सह लूंगा। किन्तु प्रत्येक गाव मे यदि हिन्दुओं के दो भाग हो जायं तो हिन्दू समाज की जो दशा होगी वह मुझसे न सही जा सकेगी। जो लोग अछूतों के राजनैतिक अधिकारों की बात करते हैं वे भारत को नहीं पहचानते और हिन्दू समाज आज किस प्रकार बना हुआ है यह नहीं जानते। इसलिए मैं अपनी पूरी शक्ति से यह कहूं कि इस बात का विरोध करने वाला यदि मैं अकेला होऊं तो भी मैं अपने प्राणों की बाजी लगा कर भी इसका विरोध करूंगा।

: ७ :

सेना

लार्ड चान्सलर महोदय तथा प्रतिनिधि-बन्धुग्रो, मैं जानता हूँ कि इस सबसे अधिक महत्त्व के प्रश्न पर महासभा का मत प्रकट करने मे मेरे कन्धों पर बडी जबरदस्त जिम्मेदारी है। मै इस अवसर पर बोलने के लिए खडा हुआ हूं, क्योकि अब तो मै इसमे आ फँसा हूँ। मैं नही जानता कि इस चर्चा या बहस की रिपोर्ट तैयार होगी अथवा नहीं। मैं यह भी नही जानता कि ये बहसे एकदम बन्द हो जायँगी अथवा आगे बढाई जायँगी। मैं तो यहां, यदि आवश्यकता हो तो शीतकाल बिताने के इरादे से आया था: इसलिए समय का तो कोई प्रश्न ही नही, यदि सयोग से मित्रता-पूर्ण बातचीत और विचार-विनिमय से महासभा का उद्देश्य पूर्ण होता हो। मै यहां जानबूझ कर इसी इरादे से भेजा गया हूँ कि चाहे इस परिषद् में खुली चर्चा करके, अथवा मन्त्रियों एवं यहां के लोकमत पर प्रभाव रखने वाले सार्वजनिक व्यक्तियों तथा भारत के जीवन-मरण के प्रश्न पर दिलचस्पी रखनेवाले सबके साथ खानगी बातचीत करके सम्मानयुक्त समझौते का प्रत्येक सम्भव उपाय खोजने का प्रयत्न करूँ। इसलिए महासभा की उस नीति से बंधे होने के कारण, जो कि आप सबको विदित है, मेरा यह फ़र्ज़ है कि मैं समझौते का एक भी उपाय शेष न छोड़ू। महासभा अपने लक्ष्य पर जल्दी-से-जल्दी पहुंचने के लिए तुली हुई है और इन सब विषयों पर अपने निश्चित मत रखती है। अधिक हकीक़त कहूँ तो उत्तरदायी शासन से आनेवाली सब प्रकार की ज़िम्मेवारी को उठाने के लिए वह आज भी तैयार है, अपने-आपको उसके लिए आज योग्य समझती है।

यह स्थिति होने के कारण मैंने खयाल किया कि इस अत्यधिक महत्वपूर्ण प्रश्न पर यथासम्भव नम्रतापूर्वक और संक्षेप-से-संक्षेप में

महासभा का मत प्रदर्शित किये बिना मै इसकी चर्चा समाप्त होने नही दे सकता ।

जैसा कि आप सब जानते है, महासभा की मांग यह है कि भारत को पूरा-पूरा उत्तरदायित्व सौप दिया जाय। इसका अर्थ यह है, और वह महासभा के प्रस्ताव मे स्पष्ट कर दिया है, कि रक्षण अर्थात् सेना और बाह्य सम्बन्धों पर उसका पूरा अधिकार होना चाहिए; किन्तु उसमें समझौतों की भी गुजायश है। मै यह अनुभव करता हूँ कि इस महत्त्व-पूर्ण विषय मे उत्तरदायित्त्व न माग कर भी हम उत्तरदायी शासन पा जायंगे, यह खयाल कर हमे अपने को और ससार को धोखा न देना चाहिए। मेरा खयाल है कि जिस राष्ट्र का अपने रक्षण-सैन्य पर और अपनी बाह्य नीति अथवा बाह्य सम्बन्धों पर अधिकार न हो, वह मुश्किल से ही उत्तरदायी राष्ट्र कहा जा सकता है। यदि राष्ट्र के रक्षण पर—सेना पर—किसी बाहर के व्यक्ति का, फिर चाहे वह कितना ही उसका मित्र क्यों न हो, अकुश हो तो वह राष्ट्र निश्चय ही उत्तरदायित्वपूर्ण शासित राष्ट्र नही कहा जा सकता। यह बात हमारे अग्रेज़-शिक्षको ने अगणित बार हमें सिखाई है, और इसलिए कुछ अग्रेज मित्रों ने जब यह सुना कि हमें उत्तरदायी शासन तो मिलेगा ; किन्तु हमारी अपनी रक्षण-सेना पर हमारा अधिकार न होगा, अथवा हम उसकी मांग न करेंगे तो इसपर उन्होंने मुझे ताना भी दिया।

इसलिए मैं यहा अत्यन्त आदरपूर्वक महासभा की ओर से सेना पर, रक्षण-सैन्य पर और बाह्य सम्बन्धों पर पूर्ण अधिकार का दावा करने के लिए आया हूँ। मैने इसमे बाह्य सम्बन्ध का भी समावेश कर दिया है, जिससे कि इस विषय पर जब सर तेजबहादुर सप्रू बोलें तो मुझे न बोलना पड़े।

हम इस निर्णय पर पूरा-पूरा विचार करके पहुंचे हैं। उत्तरदायित्व हाथ में लेते समय यदि हमे ये अधिकार न मिलें, क्योंकि हम इसके लिए योग्य नहीं समझे गये; तो मैं उस समय की कल्पना नहीं कर सकता,

क्योंकि जब हम अन्य विषयो मे उत्तरदायित्व का उपयोग करेंगे तो अकस्मात् हम अपने रक्षण-सैन्य पर अधिकार रखने के योग्य हो जायंगे।

मै चाहता हूँ कि कुछ क्षण देकर यह समिति इस बात को समझ ले कि इस समय इस सेना का क्या अर्थ है। मेरे मतानुसार यह सेना, फिर चाहे वह भारतीय हो अथवा अंग्रेज़ी, वस्तुतः देश पर अधिकार जमाये रखने के लिए है। इस सेना के सैनिक सिक्ख हों या गोरखे, पठान हों या मद्रासी अथवा राजपूत, चाहे जो कोई भी हों, जबतक वे विदेशी सरकार द्वारा नियन्त्रित सेना मे हैं, मेरे लिए सब विदेशी है। मैं उनसे बोल नही सकता। बहुत सैनिक मेरे पास चोरी से छिपकर आये हैं और मुझे उनसे बोलने तक मे डर लगता था क्योंकि उन्हे इस बात का भय था कि कही कोई उनकी रिपोर्ट न कर दे। जहा वे रखे जाते हैं, साधारणतः हमारा वहा जा सकना सम्भव नही है। उन्हें यह भी सिखाया जाता है कि वे हमें अपना देश भाई न समझे। जो ससार के किसी देश मे नही हैं, वह यहा है, और वह यह कि उनके—सैनिकों के—और सर्वसाधारण जनता के बीच कोई सम्पर्क नही है। भारतीय जीवन के प्रत्येक भाग के ससर्ग मे आने का, और जितनों के साथ सम्भव हो सके उन सबसे परिचय करने का प्रयत्न करने वाले व्यक्ति की हैसियत मे मै इस समिति के सामने अपनी साक्षी देता हूँ, यह मेरे अकेले का ही निजी अनुभव नही, प्रत्युत सैकडों और हजारो महासभावादियों का यह अनुभव है कि इन सैनिकों और हमारे बीच एक पूरी दीवार खड़ी कर दी गई है।

इसलिए मै इस बात को अच्छी तरह जानता हूँ कि इस उतरदायित्व को एकदम अपने कन्धो पर लेना और इस सेना पर, अंग्रेज़-सैनिकों की तो बात ही क्या, अधिकार रखना हमारे लिए बहुत बड़ी बात है। मुझे दुःख के साथ कहना पड़ना है कि यह अभागी और दुःखद स्थिति हमारे शासकों ने हमारे लिए पैदा की है। इतना होने पर भी हमें यह जिम्मेदारी ले लेनी चाहिए।

इसके बाद सेना का अंग्रेजी विभाग है। अंग्रेजी सेना का उद्देश्य क्या है? प्रत्येक भारतीय बालक जानता है कि अंग्रेजी और साथ ही भारतीय सेना यहा पर अंग्रेजो के स्वार्थो की रक्षा के लिए और विदेशियों के हमलो को रोकने अथवा उनका मुकाबला करने के लिए रखी गई। मुझे इसके लिए खेद है कि मुझे यह शब्द कहने पडते हैं; किन्तु मैंने निरन्तर यही बात देखी है, और इसका अनुभव किया है; और सत्य को मैंने जैसा देखा और माना है वैसा प्रकट न करूं तो अपने अंग्रेज मित्रों के प्रति भी अन्याय होगा। तीसरे, इस सेना का उद्देश्य है वर्तमान सरकार के विरुद्ध बगावत को दबाना।

इस सेना के ये मुख्य काम हैं, और इसलिए इस सम्बन्ध मे अंग्रेजो का जो दृष्टिकोण है, उससे मुझे कुछ आश्चर्य नही होता। यदि मैं अंग्रेज होता और मेरी भी दूसरे देशों पर शासन करने की महत्त्वाकांक्षा होती तो मैं भी ठीक ऐसा ही करता। मैं भारतीयों को पकड़ कर सैनिकों की तरह शिक्षा देता, उन्हे अपना वफादार होना सिखाता, इतना वफादार कि मेरा हुक्म पाते ही मेरे बताये किसी भी व्यक्ति पर गोली चला दें। जिन लोगों ने जलियांवाला बाग मे लोगों पर गोलियां चलाईं वे हमारे ही देशवासी नही तो और कौन थे?

अंग्रेज़ी सेना के भारत मे रखे जाने का यही उद्देश्य है कि वह इन विभिन्न भारतीय सैनिकों के बीच अच्छी तरह समतौल रखती है। वह अंग्रेज अधिकारियों और अंग्रेजो के प्राणो की रक्षा करती है जो कि उसे करनी ही चाहिए। यदि मै यह तत्त्व स्वीकर कर लू कि भारत पर अंग्रेजों का अधिकार करना उचित था, और कोई परवा नही, स्थिति कैसी ही परिवर्तित क्यों न हो, आज भी उसपर अंग्रेजों का अपना अधिकार क़ायम रखना और आगे के लिए भी जारी रहने देना उचित है तो फिर मुझे कोई शिकायत रहे ही नहीं।

इस प्रकार जिस प्रश्न को सर तेजबहादुर सप्रू और इसी तरह पण्डित

मदनमोहन मालवीय ने टाल दिया, उसका उत्तर देने मे मुझे कोई आपत्ति नही है । उक्त दोनों ने यह कहा कि विशेषज्ञ न होने के कारण वे यह नही बता सकते कि किस हद तक यह सेना घटाई जा सकती है या घटा दी जानी चाहिए । किन्तु मेरे सामने ऐसी कोई कठिनाई नही है । मुझे यह बताने मे कोई दिक्कत नही है कि इस सेना का क्या होना चाहिए । मै यह बात जोर के साथ कहूँगा कि विदेशी शासन से विरासत मे मिले हुए भयकर विघ्नों के साथ भारत के शासन को चलाने का उत्तरदायित्व मै अपने कंधो पर ले सकू, इसके पूर्व यदि यह सेना मेरे अधिकार मे न आवे तो इस सारी सेना को तोड अथवा बिखेर देना चाहिए ।

इसलिए यह मेरी मौलिक स्थिति होने के कारण मै कहना चाहता हूँ कि यदि आप ब्रिटिश मन्त्रिगण तथा ब्रिटिश जनता सचमुच भारत के द्वारा भला चाहते हो, यदि आप हमे अभी सत्ता सौपने के लिए तैयार हो तो आप इस शर्त को आवश्यक एव अनिवार्य समझे कि सेना पर हमारा पूरा-पूरा अधिकार होना चाहिए ।

किन्तु मै आपसे कह चुका हूँ कि इसमे जो खतरा है वह मै जानता हूं । मैं यह अच्छी तरह जानता हूँ कि यह सेना मेरा आदेश नहीं मानेगी । मै जानता हूँ कि अंग्रेज सेनाधिपति मेरी आज्ञा का पालन न करेंगे; उसी तरह सिक्ख और अभिमानी राजपूत, कोई भी मेरा हुक्म न बजावेगे । किन्तु फिर भी मै अपेक्षा करता हूँ कि ब्रिटिश जनता की सद्भावना से मैं अपने आदेश एवं आज्ञा का पालन करा सकूंगा । यह अधिकार एवं अंकुश बदलने के समय वे इन्ही सैनिकों को नया पाठ पढाने के लिए वहां मौजूद रहेगे और उन्हें बतायंगे कि इनके आदेशों का पालन करोगे तो अन्त में तो तुम अपने ही देश-भाइयों की सेवा करोगे । अंग्रेज सैनिकों से भी यह कहा जा सकेगा कि "अब तुम यहा अंग्रेजों के स्वार्थ और उनके प्राण बचाने के लिए नही, वरन् अपने

ही देश-भाइयो की सेवा करते हो। इस तरह तुम भारत की विदेशी हमलो से तथा उसी तरह आन्तरिक-विग्रह से रक्षा करने के लिए हो।" यह मेरा स्वप्न है। मैं जानता हूँ कि मेरा यह स्वप्न सच्चा न होगा। मैं ऐसा अनुभव करता हूँ; मेरे सामने इसका प्रमाण है: मेरी बुद्धि मुझे गवाही देती है कि आज और इस परिषद् की चर्चा के परिणाम-स्वरूप मेरा यह स्वप्न सच्चा न होगा। किन्तु फिर भी मै उस स्वप्न को पोषित करता रहूँगा। अपनी जिन्दगी भर इस स्वप्न को पोषित करना मुझे पसन्द होगा। किन्तु यहा का वातावरण देखकर मै जानता हूँ कि सम्भवतया मै ब्रिटिश जनता मे इस विचार एव आदर्श का सचार नही कर सकता कि इस बात को उन्हे भी पोषित करते रहना चाहिए। इसी तरह मै लार्ड अर्विन की इच्छाओ का अर्थ करूंगा। इसी बात में ग्रेट ब्रिटेन को अपना गौरव मानना चाहिए, यह उसका कर्तव्य होना चाहिए कि इस समय वह हमे अपनी रक्षा करने के रहस्य बता दे। हमारे पर कतर देने के बाद अब यह उसका कर्तव्य हो जाता है कि वह हमारे पर लौटा दे, जिनसे हम उसी तरह उड सके जिस तरह वह उडता है। यही वास्तव मे मेरी महत्त्वकाक्षा है और इसलिए मै कहता हूँ कि यदि सेना पर मुझे अधिकार न मिलेगा तो मै अनन्तकाल तक प्रतीक्षा करता रहूँगा। मै अपने-आपको यह धोखा देने से इनकार करता हूँ कि यद्यपि मै अपनी सेना का नियन्त्रण नही कर सकता, फिर भी मै उत्तरदायी शासन चलाने के लिए तैयार हूँ।

आखिर भारत कोई ऐसा देश तो है नही, जो कभी यह न जानता हो कि अपनी रक्षा किस तरह करनी चाहिए? इसके लिए उनके पास पूरी सामग्री मौजूद है। मुसलमानो को विदेशी हमले का कोई डर है ही नही। सिक्ख इस बात को ही मानने से इनकार कर देगे कि उन्हे कोई जीत सकता है और गुरखे में ज्योंही राष्ट्र-भावनाओ का विकास हो जायगा, त्योही वह कह उठेगा, 'मै अकेला ही भारत की रक्षा कर सकूंगा।' फिर हमारे यहां राजपूत है, जो ग्रीस की एक छोटी-सी थर्मा-

पोली नही, हजारो थर्मापोली के जन्मदाता कहे जाते हैं। यह बात हमे अंग्रेज-इतिहासज्ञ कर्नल टाड ने बताई है। उन्होंने हमें बताया है कि राजपूताने की प्रत्येक घाटी एक थर्मापोली है। क्या इन लोगों को रक्षण-कला सिखाने की आवश्यकता है ? मै जानता हूं कि यदि मैं अपने कन्धों पर उत्तरदायित्व उठाऊ तो ये सब लोग उसमे मेरा हाथ बटावेंगे। मैं यहां यह देखकर तीव्र वेदना अनुभव कर रहा हूं कि हम लोग अभी तक साम्प्रदायिक प्रश्नो का निपटारा न कर सके; किन्तु इस प्रश्न का निपटारा जब कभी भी होगा, उसमे यह तो पूर्वनिर्धारित होना ही चाहिए कि हम एक-दूसरे पर विश्वास रखेगे। चाहे शासन में प्राधान्य मुसलमानों का हो, चाहे सिक्खों का, चाहे हिन्दुओं का, वे मुसलमान, सिक्ख अथवा हिन्दू की तरह नही, प्रत्युत एक भारतीय की तरह शासन करेगे। यदि हममे एक-दूसरे के प्रति अविश्वास रहेगा और हमें एक-दूसरे के हाथ कट मरना न होगा तो इसके लिए हमें अंग्रेजों की ज़रूरत रहेगी। फिर उस दशा मे हमे उत्तरदायी शासन की बातचीत न करनी चाहिए।

कम-से-कम मै तो इस बात की कल्पना ही नहीं कर सकता कि सेना पर अधिकार हुए बिना ही उत्तरदायी शासन मिल गया है। मुझे अपने हृदय की नीची-से-नीची तह से ऐसा प्रतीत होता है कि यदि हमें उत्तर-दायी शासन लेना हो और महासभा उत्तरदायी शासन चाहती है—उसका अर्थात् महासभा का अपने पर, जनसमूह पर और उन सब बहादुर सैनिक जातियों पर विश्वास है, इतना ही नही अंग्रेजों पर भी उसका यह विश्वास है कि किसी दिन वे अपना कर्त्तव्य-पालन करेगे और हमें पूरा अधिकार सौप देगे—तो हमे अंग्रेजों में भारत के प्रति वह प्रेम फूक देना चाहिए जिसमे कि भारत अपने पैरों पर खड़ा होने की शक्ति प्राप्त कर सके। यदि अंग्रेज जनता का यह खयाल हो कि ऐसा होने के लिए अभी एक शताब्दी की जरूरत है तो इस शताब्दी भर महासभा जंगलों में भटकती रहेगी और उसे उस भयंकर अग्नि-परीक्षा में होकर गुजरना होगा। आपदाओ के तूफ़ान और गलतफ़हमियों के बवण्डर का मुकाबला

करना होगा और—यदि आवश्यक हुआ और ईश्वर की इच्छा हुई तो—गोलियों की बौछार भी सहनी होगी। यदि ऐसा हुआ तो इसका कारण यह होगा कि हम एक-दूसरे पर विश्वास नहीं रख सकते और अंग्रेजों और भारतीयों के दृष्टिकोण जुदा-जुदा हैं।

यह मेरी मौलिक स्थिति है। मैं तफ़सील में नहीं जाना चाहता। मुझमें जितनी शक्ति थी, उतने ज़ोर से मैंने यह बात रख दी। किन्तु यदि यह बात स्वीकार कर ली जाय तो किसी भी निष्पक्ष व्यक्ति को पसन्द आ जाने लायक एक के बाद एक संरक्षण बनाकर पेश करने जैसी सूझ मुझमे है, केवल यह बात दोनों पक्षों को स्वीकृत होनी चाहिए कि ये संरक्षण भारत के हितसाधक होंगे। किन्तु मैं तो इससे भी आगे जाना और लार्ड अर्विन के इस कथन की पुष्टि करना चाहता हूँ—यद्यपि समझौते में संरक्षणों के भारत के हितसाधक होने की ही बात है—कि वे भारत और इंग्लैण्ड के परस्पर-हितसाधक होने चाहिएं। मैं एक भी ऐसे सरक्षण की कल्पना नहीं कर सकता जो केवल भारत के हित में होगा। कोई भी ऐसा सरक्षण नहीं है, जो कि साथ ही ब्रिटेन का भी हितसाधक न हो, क्योंकि हम साझेदारी, इच्छित और सर्वथा बराबरी के दर्जे की साझेदारी की कल्पना करते हैं।

जो कारण मैंने आज सेना पर पूरा अधिकार दिये जाने के लिए पेश किये हैं, वे ही कारण बाह्य सम्बन्ध पर अधिकार प्राप्त करने के सम्बन्ध में हैं।

बाह्य सम्बन्धों का वास्तविक अर्थ क्या है, इस सम्बन्ध में मेरी पूरी जानकारी न होने के कारण और इस सम्बन्ध में गोलमेज़-परिषद् की इन रिपोर्टों मे बताई गई बातों का मुझे ज्ञान न होने से बाहरी मामले और वैदेशिक सम्बन्ध का क्या अर्थ है, इस विषय का प्रथम पाठ पढ़ाने के लिए मैंने अपने मित्र श्री आयंगर और सर तेजबहादुर सप्रू से पूछा। उनके उत्तर मेरे पास मौजूद हैं। उनका कहना है कि इन शब्दों का अर्थ पड़ोसी राज्यों देशी राज्यों, अन्तर्राष्ट्रीय बातों में दूसरे राष्ट्रों और

इग्लैण्ड के उपनिवेशों के साथ का सम्बन्ध होता है। यदि बाह्य सम्बन्धों का यही अर्थ हो तो मैं समझता हूँ कि इस बोझ को उठाने और इस सम्बन्ध में अपना कर्त्तव्यपालन करने मे हम पूरे समर्थ हैं। निश्चय ही हम अपने ही सम्बन्धियों के साथ अपने ही पड़ोसियों और हमारे ही देश-बन्धु भारतीय नरेशों के साथ सुलह की शर्तें तय कर सकेंगे, अपने पडोसी अफगानों के साथ और समुद्र-पार जापानियों के साथ प्रगाढ मित्रता पैदा कर सकते हैं, और निश्चय ही उपनिवेश के साथ भी संधि कर सकते हैं। यदि उपनिवेश अपने यहां हमारे देशवासियों को पूर्ण आत्म-सम्मान के साथ न रहने देंगे तो हम उनसे निपट लेंगे।

सम्भव है कि मैं अपनी मूर्खता के कारण ऐसा कह रहा हू; किन्तु आप लोगो को समझ लेना चाहिए कि महासभा मे मेरे जैसे हजारों और लाखों मूर्ख पुरुष और स्त्रियां हैं; और मैं उन्हींकी ओर से आदर-पूर्वक यह दावा पेश करता हूँ और फिर कह देना चाहता हूँ कि जिन सरक्षणों की कल्पना की है, उन्हे स्वीकार कर हम अपने वचनों का अक्षरशः पालन करेगे।

पण्डित मदनमोहन मालवीय ने सरक्षणो की रूपरेखा बता दी है। मैं उनके कथन के अधिकांश से सर्वथा सहमत हूँ; किन्तु कुछ यही एक-मात्र संरक्षण नहीं हैं। यदि अंग्रेज और भारतवासी मिलकर विचार करेंगे और मन मे बिना किसी प्रकार का पाप रखे एक ही दिशा मे प्रयाण करेगे तो मैं पूर्ण विश्वास के साथ कहता हूँ कि कदाचित् हम ऐसे सरक्षण तैयार कर सकेंगे, जो कि भारत और इग्लैण्ड दोनों के लिए समानतः सम्मानपूर्ण होंगे, और जो प्रत्येक अग्रेज के प्राणों की और भारत द्वारा स्वीकृत उनके प्रत्येक हितों की सुरक्षा के लिए संरक्षण-रूप होंगे। लार्ड चान्सलर महोदय, इससे अधिक आगे मै जा नहीं सकता। इस सभा का समय लेने के लिए मैं सहस्र वार क्षमा मांगता हूँ; किन्तु दिन-प्रति-दिन यहां बैठने और इन चर्चाओं का सफल परिणाम किस प्रकार निकल सके, इसपर अहोरात्रि चिन्तन करते हुए मेरे हृदय में जो

भाव उठ रहा है, उसकी आप कल्पना कर सकते हैं। जो भावना मुझे प्रेरित कर रही है वह आप समझ सकते हैं। मेरी यह भावना अंग्रेजों के प्रति पूर्णतः सद्भाव की और अपने देशवासियों के प्रति पूर्णतः सेवाभाव की है।

: ८ :

व्यापारिक भेदभाव

लार्ड चान्सलर महाशय और मित्रो, श्री ब्रेंथोल ने जो अत्यन्त सौम्य वक्तव्य दिया है, उसके लिए मै उनका अभिनन्दन करता हूँ और मै चाहता हू कि यदि इस सुन्दर वक्तव्य में उन्होंने दो भावनाओ का समावेश कर उसे न बिगाडने के लिए कोई तरीक़ा निकाला होता तो अच्छा होता। उनकी प्रदर्शित एक भावना का अर्थ यह है कि यूरोपियन अथवा अंग्रेज़ जो मांग करते हैं, उसका कारण यह है कि उन्होंने भारत को कई लाभ पहुंचाये हैं। मै चाहता हूँ कि यदि वे इस राय को टाल सके होते तो अच्छा होता। किन्तु उसके प्रकट हो चुकने के बाद उसपर सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास ने उसका जो शिष्टतापूर्ण प्रत्युत्तर दिया और जैसा कि हमने सुना, अब सर फ़िरोज़ सेठना ने जिस प्रत्युत्तर का समर्थन किया, लार्ड रीडिंग ने जो आश्चर्य प्रकट किया है, उसकी ज़रा भी आवश्यकता न थी। मै यह भी चाहता हूँ कि जिस बड़ी संस्था के वे प्रतिनिधि है, उसकी ओर से उन्होंने उक्त वक्तव्य मे जो धमकी दी है, उसे भी यदि वे टाल गये होते तो अच्छा होता। उन्होंने कहा कि अंग्रेज भारत की राष्ट्रीय मागों का समर्थन इसी शर्त पर करेगे कि भारतीय राष्ट्रवादी उनकी बताई हुई अंग्रेजों की मांगों को स्वीकार करलें। कुछ ही दिन पहले हम इनकी ओर से की गई पृथक् निर्वाचक-मंडल की मांग सुन चुके हैं, उसमें प्रकट होने वाली पृथकता की मनोवृत्ति, और

पृथक होना चाहने वालों के जिस समूह के विषय में मुझे उस दिन जो दुःखपूर्वक बोलना पड़ा था, उसमें सम्मिलित हो जाने की अंग्रेजों की इच्छा भी इसमे शामिल है। पिछली परिषद् मे स्वीकृत प्रस्ताव के अध्ययन का मैंने प्रयत्न किया है। यद्यपि आप उससे परिचित हैं, फिर भी मैं उसे पुनः पढ देना चाहता हूं, क्योंकि उसके संबंध मे मुझे कुछ बातें कहनी होंगी। प्रस्ताव यह है—"अंग्रेज व्यापारी-वर्ग के कहने से सबने यह सिद्धांत सामान्यतः स्वीकार किया है कि भारत मे व्यापार करने वाले अंग्रेजी व्यापारीवर्ग, फर्म्स और कम्पनियों के अधिकार और भारत में पैदा हुए प्रजाजन के अधिकार में कोई भेदभाव न होना चाहिए।"

प्रस्ताव के शेष भाग के पढ़ने की मुझे कुछ आवश्यकता नही। सर तेजबहादुर सप्रू और श्री जयकर के प्रति अत्यन्त आदरभाव रखते हुए भी मुझे अत्यन्य दुःख के साथ इस अमर्यादित प्रस्ताव के साथ मतभेद प्रदर्शित करना पडता है। इसलिए कल, जब सर तेजबहादुर सप्रू ने तुरन्त ही यह बात स्वीकार करली कि यह प्रस्ताव सन्दिग्ध है और उसमे सुधार की गुजायश है तो मुझे प्रसन्नता हुई। यदि आप इस प्रस्ताव का ध्यानपूर्वक अध्ययन करेंगे तो आपको प्रतीत होगा कि उसका रूप कितना व्यापक है! भारत मे व्यापार करने वाले अंग्रेज-व्यापारीवर्ग, फर्म्स और कम्पनियों के अधिकार और भारत में पैदा हुए प्रजाजन के अधिकार में कोई भेदभाव न होगा। यदि मैं इसको ठीक समझा हूँ तो यह एक भयानक वस्तु है और कम-से-कम मैं तो इस तरह के प्रस्ताव से, भारत की भावी सरकार की तो बात ही क्या, महासभा तक को नही बांध सकता।

इसमे किसी तरह की भी योग्यता अथवा मर्यादा का नामोनिशान भी नहीं है। अंग्रेज-व्यापारीवर्ग के बिलकुल वही अधिकार क़ायम रहेंगे, जो कि भारत में पैदा हुए प्रजाजन के होंगे; इसलिए मानों जातीय भेदभाव, अथवा वैसी कोई बात ही न होगी, इस सम्बन्ध में

अंग्रेज व्यापारोवर्ग भारतीय प्रजाजन के समान ही पूरे अधिकार भोगेंगे। मैं अपने पूरे बल के साथ कहना चाहता हूँ कि मै तो इस सूत्र तक को सम्मति न दूंगा कि भारत में उत्पन्न सभी प्रजाजनों के अधिकार अविचल अथवा समान होंगे। इसका कारण मै आपको अभी बताता हूं।

मै समझता हूं, आप इस बात को तुरन्त स्वीकार कर लेगे कि मौजूदा सरकार ने जिन बातों की ओर दुर्लक्ष्य किया है, स्थिति मे समानता लाने के लिए, भारत की भावी सरकार को उनके प्रति सतत् ध्यान रखना ही पड़ेगा; अर्थात्, जिन लोगों को प्रकृति अथवा स्वय सरकार की कृपा से धन-वैभव अथवा अन्य साधन-सुविधाए मिली हुई हैं, उनके मुकाबले में उसे भूखे मरने भारतीयो के प्रति सदैव पक्ष-पात करना होगा। कदाचित् भावी सरकार को अपने मजदूरों को मुफ्त म देने के लिए मकान बनवा देना आवश्यक प्रतीत हो, उस समय सम्भव है भारत के धनिक लोग यह कहें कि 'यद्यपि हमें इस प्रकार के घरों की आवश्यकता नहीं है फिर भी यदि सरकार अपने मजदूरों के लिए घर बनवाती है तो हमे भी सहायता व साधन दे।' लेकिन सरकार के लिए ऐसा कर सकना सम्भव नही। उस अवस्था मे वह अवश्य ही मजदूरों के लिए पक्षपात करेगी। उस समय उक्त प्रस्ताव में निर्धारित सूत्र के अनुसार धनिक लोग कहेगे कि उनके विरुद्ध भेद-भाव किया गया है।

इसलिए मैं साहसपूर्वक सूचित करता हूँ कि जब कि हम इस परिषद् में, जिस हद तक सम्राट् की सरकार भारत के भावी विधान की रचना में हमारी सहायता स्वीकार करती है, उस हद तक सहायता पहुंचाने का प्रयत्न कर रहे हैं, इस अमर्यादित सूत्र का स्वीकार किया जा सकना सम्भव हो नहीं सकता।

किन्तु यह कहने के बाद मै अंग्रेज़-व्यापारियो और यूरोपियन फ़र्म्स की इस उचित मांग से सर्वथा सहमत हूँ कि उनके साथ किसी प्रकार

का जातीय पक्षपात न होना चाहिए। मैं, जिसे कि दक्षिण अफ़रीका की महान सरकार के साथ, उसके रंगभेद और भारतीयों के प्रति भेदभाव-मूलक क़ानून के विरोध में २० वर्ष तक लड़ना पड़ा था, भारत मे अभी मौजूद अथवा भविष्य में आना चाहने वाले अंग्रेज मित्रों के साथ उसी प्रकार के भेदभाव किये जाने की बात का कभी समर्थन नही कर सकता। मैं यह बात महासभा की ओर से भी कह रहा हूँ। महासभा का भी यही मत है।

इसलिए उक्त सूत्र के बजाय, मैं कुछ ऐसा सूत्र सुझाता हूँ, जिसके लिए कि मुझे वर्षों तक जनरल स्मट्स के साथ लडने का सुख और सद्भाग्य प्राप्त हुआ था। उसमें परिवर्तन हो सकता है; किन्तु मैं तो उसे केवल इस समिति के और विशेषतः अंग्रेज-मित्रों के विचार के लिए यहां पेश करता हूँ। वह इस प्रकार है—"स्वराज्य में भारत में उत्पन्न किसी भी नागरिक पर जो प्रतिबन्ध न लगाया गया होगा, वैसा कोई भी प्रतिबन्ध भारत में कानून के अनुसार रहने वाले अथवा प्रवेश करने वाले किसी भी व्यक्ति पर केवल—मैं 'केवल' शब्द पर जोर देता हूँ—जाति, रंग अथवा धर्म के कारण न लगाया जायगा।"

मै समझता हूँ कि यह सबके लिए संतोषप्रद सूत्र है। कोई भी सरकार उससे आगे जा नही सकती। मैं इस सूत्र के गर्भित अर्थ पर संक्षेप मे अपने विचार प्रकट करना चाहता हूँ और मुझे खेद है कि गत वर्ष के सूत्र से लार्ड रीडिंग ने जो अर्थ निकाला था, अथवा निकालना चाहा था, उससे यह गर्भित अर्थ भिन्न है। इस सूत्र मे एक भी अंग्रेज तो क्या यूरोप के किसी भी निवासी के साथ, उसके अंग्रेज अथवा यूरोपियन होने के कारण कोई भेदभाव न होगा। मैं यहां अंग्रेज अथवा अन्य यूरोपियन अथवा अमेरिकन या जापानी के बीच कोई भेदभाव नहीं करता। ब्रिटिश उपनिवेशों ने रंग और जाति-भेद के निश्चित आधार पर प्रतिबन्धक क़ानून बनाकर मेरी नम्र-सम्मति में अपनी क़ानून की पुस्तक को जिस प्रकार दूषित किया है, मैं उसका अनुकरण न करूंगा।

मुझे यह विचार प्रिय है कि स्वतन्त्र भारत समस्त ससार को एक दूसरी ही तरह का पाठ पढावेगा, एक दूसरे ही प्रकार का उदाहरण उसके सामने रक्खेगा। मैं यह कभी न चाहूँगा कि भारत सर्वथा एकाकी जीवन व्यतीत करे और इस प्रकार अपने चारों ओर गढ-कोट खडे करके अपनी सीमा मे किसी को प्रवेश अथवा व्यापार ही न करने दे। किन्तु इतना कहने के बाद जैसा कि मै पहले कह चुका हूँ, 'स्थिति मे समानता लाने के लिए' की जाने योग्य कई बाते मेरे मन मे है। मुझे भय है कि पूजीपतियों, जमीदारों, ऊची कही जाने वाली जातियो और अन्त में वैज्ञानिक विधि से अंग्रेज-शासको ने दीन, दलित पतितों को जिस कीचड मे फसा दिया है, उससे उन्हे निकालने के लिए भारत को आगामी अनेक वर्षो तक कानून बनाने मे सलग्न रहना पड़ेगा। यदि हमे इन लोगो को कीचड मे से निकालना हो तो अपना घर व्यवस्थित करने के लिए, इन लोगों का विचार पहले करना तथा जिस बोझ के नीचे वे कुचले जा रहे हैं, उससे उन्हे छुडाना भी राष्ट्रीय सरकार का कर्तव्य होगा। जो जमीदार, धनिक अथवा विशेष अधिकार-भोगी लोग—चाहे वे अंग्रेज हो या भारतीय—यदि यह देखे कि उनके साथ भेदभावपूर्ण बरताव होता है, तो मै उनके प्रति सहानुभूति अवश्य प्रकट करूंगा, किन्तु मुझसे सहायता हो सकती होगी तो भी, मै सहायता न करूंगा, क्योंकि मै तो इस क्रिया मे उनकी सहायता चाहूँगा और बिना उनकी सहायता के इन लोगो को कीचड मे से बाहर न निकाल सकूगा।

यदि आप चाहे तो अन्त्यजों की दशा पर नजर डालिए और देखिए कि यदि क़ानून उनका सहायक बनकर उनके लिए कई कोसो का प्रदेश अलग कर दे तो उनकी क्या स्थिति हो जाती है? आज उनके पास जरा भी जमीन नही है। आज वे उच्च जाति के कहे जाने वाले लोगों की दया पर, और मुझे कहने दीजिए कि सरकार की दया पर, जीवित हैं। वे आज एक जगह से दूसरी जगह खदेड़े जा सकते हैं; किन्तु इसकी न तो वे शिकायत कर सकते हैं, न क़ानून की सहायता प्राप्त कर सकते

हैं। इसलिए व्यवस्थापिका-सभा का पहला काम यह देखना होगा कि वह किस हद तक इनकी स्थिति समान करने के लिए, इन लोगों को मुक्त-हस्त से सहायतार्थ रकम दे।

सहायता की ये रकमें किनकी जेबों में से आयंगी? ईश्वर की जेबों में से नही। सरकार के लिए ईश्वर आकाश से रुपयों की वर्षा न करेगा। स्वभावतः यह रकम धनिक लोगों के पास से ही आयगी, जिनमें अंग्रेज भी शामिल हैं। क्या वे कहेंगे कि यह भेदभाव है? वे देख सकेंगे कि उनके साथ का यह भेदभाव उनके यूरोपियन होने के कारण नही है, बल्कि इसलिए है कि इनके पास पैसा है, और दूसरे के पास पैसा नही है। इसलिए यह धनिकों और गरीबों की लड़ाई होगी; और यदि इसी बात की आशंका हो और यदि ये सब वर्ग करोड़ों मूक प्राणियों के सिर पर बन्दूक तान कर कहें कि जबतक तुम हमारी मिल्कियत और हमारे अधिकार की अक्षुण्णता का निश्चित वचन नही दे देते, तबतक तुम्हें स्वराज्य न मिलेगा तो मुझे भय है कि राष्ट्रीय सरकार का जन्म ही न हो सकेगा।

मै समझता हूँ कि महासभा का ध्येय और मैंने जो सूत्र बताया है उसका गर्भित अर्थ क्या है, इसका मैंने काफी परिचय करा दिया है। वे यह बात कभी न पावेंगे कि क्योंकि वे अंग्रेज, यूरोपियन, जापानी अथवा किसी अन्य जाति के हैं, इसलिए उनके साथ भेदभाव किया जाता है। जिन कारणों से उनके साथ भेदभाव किया जायगा, वे ही कारण भारत मे उत्पन्न प्रजाजनों के साथ भी लागू होंगे।

मेरे पास जल्दी में तैयार किया हुआ और एक सूत्र है; इसलिए कि मैंने यही पर लार्ड रीडिंग और सर तेजबहादुर सप्रू का भाषण सुनते-सुनते ही तैयार किया है।

यह दूसरा सूत्र जो मेरे पास है, वह वर्तमान अधिकारों के सम्बन्ध में है—

"किसी भी न्यायार्जित अधिकार में, जो आमतौर पर राष्ट्र के

सर्वोच्च हितों के विरुद्ध न होगा, ऐसे अधिकारों पर लागू होने वाले क़ानून के सिवा और किसी तरह हस्तक्षेप न किया जायगा।"

आज अंग्रेज़ी सरकार के सिर पर कर्ज़ देना है। उसके आगामी सरकार के अपने सिर पर लेने-सम्बन्धी महासभा के प्रस्ताव में जो बात आप देखते हैं, निश्चय ही वह मेरे मन मे भी है। जिस प्रकार हमारी यह मांग है कि इस क़र्ज को अपने सिर पर लेने के पूर्व निष्पक्ष न्याय-मण्डल द्वारा उसकी जांच होनी चाहिए, उसी तरह आवश्यकता होने पर वर्तमान अधिकारों की नियमानुसार जांच किये जाने की भी छूट्टी होनी चाहिए। इसलिए प्रश्न कर्ज़ से इनकारी का नही है, वरन् उसकी जांच हो जाने के बाद स्वीकार करने का ही है। यहां हममे कुछ लोग ऐसे हैं, जिन्होंने यूरोपियन लोगों का, जो विशेषाधिकार तथा एकाधिकार भोग रहे है, अध्ययन किया है। किन्तु अकेले यूरोपियनों की बात नही है। भारतीयों में भी ऐसे लोग हैं—मेरे ध्यान मे निश्चय ही अनेक ऐसे भारतीय है—जो आज जिस भूमि पर कब्जा किये हुए हैं, वह उन्होंने प्रजा की किसी सेवा के बदले मे नही पाई है; मै यह भी नही कह सकता कि सरकार की सेवा के एवज मे वह उन्हे मिली है, क्योंकि मै यह नही मानता कि उससे सरकार को कब लाभ पहुंचा है वरन् वह उन्हे दी गई है किसी अधिकारी की सेवा के बदले मे। और यदि आप मुझे कहें कि सरकार इन रिआयतों और विशेषाधिकारों की जांच न करेगी तो मै आपसे फिर कहूँगा कि अकिंचनों की ओर से, दलितों की ओर से शासनतन्त्र चलाना असम्भव हो जायगा। इसलिए आप देखेंगे कि इससे यूरोपियनों के सम्बन्ध मे कुछ भी नही कहा गया है। दूसरा सूत्र भी यूरोपियनों पर उतना ही लागू होता है, जितना भारतीयों पर; या यों कहिए जितना सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास और सर फ़िरोज़ सेठना पर लागू होता है। यदि इन्होंने सरकारी अधिकारियों की सेवा करके कुछ लाभ उठाया होगा, मीलों अथवा कोसों ज़मीन प्राप्त की होगी तो यदि शासन की लगाम मेरे हाथ में होगी तो मैं तुरन्त ही वह उनके पास से

छुड़ा लूंगा। वे भारतीय हैं, इसलिए मैं उन्हे छोड़ न दूंगा; और उतनी ही तत्परता से मैं सर ह्यूबर्ट कार अथवा श्री ब्रेंथोल के पास से भी धरवा लूंगा, फिर चाहे वे कितने ही प्रशसायोग्य क्यों न हों और मेरे प्रति कितना ही मित्र-भाव न रखते हों। यह विश्वास मैं आपको दिला देना चाहता हूँ कि कानून किसी व्यक्ति के प्रति पक्षपात न करेगा। यह विश्वास दिलाने के बाद, इससे आगे मैं जा नही सकता। इसलिए 'न्यायार्जित' शब्द का वास्तविक गर्भित अर्थ यह है कि प्रत्येक अधिकार अथवा हित निष्कलक और सीजर की स्त्री के समान सन्देह से परे होना चाहिए, और इससे जब ये सारी बाते सरकार की नजर मे आवें तो हम इनकी जांच की अपेक्षा रखेगे।

इसके बाद 'राष्ट्र के सर्वोच्च हितो के विरुद्ध न हों' ये शब्द आते हैं। विचार मे कोई एकाधिकार ऐसे हैं जो निस्सन्देह न्यायतः प्राप्त हैं; पर राष्ट्र के सर्वोच्च हितों को हानि पहुंचा कर पैदा किये गये हैं। मैं आपको एक उदाहरण देता हूँ, इससे आपको कुछ मनोरजन होगा, किन्तु उसके सम्बन्ध मे कुछ पक्षापक्षी के लिए अवकाश नही। इस नयी दिल्ली नामधारी सफेद हाथी को लीजिए। उसपर करोड़ों रुपये खर्च हुए हैं। मान लीजिए कि भावी सरकार इस निर्णय पर आवे कि यह सफेद हाथी अपने पास है, इसलिए इसका कुछ उपयोग होना चाहिए, कल्पना कीजिए कि पुरानी दिल्ली मे प्लेग अथवा हैजा फैला है और हमे गरीबों के लिए अस्पतालो की जरूरत है। इस स्थिति में हम क्या करें? क्या आप समझते हैं कि राष्ट्रीय सरकार अस्पताल या ऐसी चीज़ बनवा सकेगी? नहीं, ऐसी कोई बात न होगी। हम इन इमारतों पर अधिकार करेंगे, इन प्लेग-ग्रस्त रोगियों को उनमें रखेगे, और उनका अस्पताल की तरह उपयोग करेंगे, क्योंकि मेरे मन मे ये इमारते राष्ट्र के सर्वोच्च हितों के विरुद्ध हैं। वे भारतवर्ष के करोडों लोगो की स्थिति को प्रकट नही करती। वे तो इस मेज़ के पास बैठे हुए धनिक लोगों की शोभा देने जैसी हो सकती हैं—भोपाल के नवाब साहब अथवा सर पुरुषोत्तमदास

ठाकुरदास, सर फ़िरोज सेठना अथवा सर तेजबहादुर सप्रू के योग्य हो सकती हैं ; किन्तु जिन लोगों के पास रात को सोने के लिए स्थान नहीं और खाने के लिए रोटी का टुकड़ा नहीं, उनकी दशा के साथ इनका ज़रा भी मेल नहीं हो सकता। यदि राष्ट्रीय सरकार इस निर्णय पर पहुंचे कि वह जगह अनावश्यक है तो इस बात की कुछ परवाह नहीं कि उसपर कितने ही अधिकार क्यों न हों, वे सब रद्द किये जाकर ये इमारतें ले ली जायगी और मैं आपको बता देना चाहता हूं कि वे बिना किसी मुआवज़े के ले ली जायगी, क्योंकि यदि आप इस सरकार से मुआवजा दिलाना चाहेंगे तो उसका अर्थ होगा माधो को देने के लिए ऊधो से छीनना। यह एक असम्भव बात होगी।

महासभा जिस सरकार की कल्पना करती है, वैसी सरकार का अस्तित्व स्थापित होने वाला हो तो आपको यह कड़वी गोली निगलनी होगी। इस विश्वास के धोखे में रखकर कि सब बातें सर्वथा ठीक होगी, मैं आपको धोखा नहीं देना चाहता। महासभा की ओर से मैं सारी बाजी आपके सामने रख देना चाहता हूँ। मैं मन में किसी तरह की कुछ बात छिपा कर नहीं रखना चाहता और इसके बाद यदि महासभा का दावा आपको स्वीकृत हो तो मुझे अत्यन्त आनन्द होगा, किन्तु यदि आपको वह स्वीकृत न हो, यदि आज मुझे ऐसा प्रतीत हो कि मैं आपके हृदय को स्पर्श कर अपनी बात आपसे नहीं मनवा सकता, तो जबतक आप सबका हृदय-परिवर्तन नहीं हो जाता और आप भारत के करोड़ों लोगों को यह अनुभव करने का मौका नहीं देते कि अन्त में उन्हे राष्ट्रीय सरकार मिल गई, तबतक महासभा को भटकते रहना और आपके मत-परिवर्तन का प्रयत्न करते रहना होगा।

प्रस्ताव की इन पंक्तियों पर अभी तक किसी ने एक भी शब्द नहीं कहा है—

"यह स्वीकार किया गया कि भारत में यूरोपियन जातियों को फ़ौजदारी मामलों में जो अधिकार हैं, वे क़ायम रहने चाहिए।

मुझे यह स्वीकार करना चाहिए कि इसके सब गर्भित अर्थों का मैं अध्ययन नही कर सका हूँ। मुझे यह कह सकने के लिए खुशी है कि कुछ दिनों से सर ह्यूबर्ट कार, श्री ब्रेन्थोल और कई मित्रों के साथ मैं मित्रतापूर्ण और खानगी बातचीत चला रहा हूँ। उनके साथ इसी विषय की चर्चा कर रहा था और मैंने उनसे पूछा कि इन दोनों बातो का क्या अर्थ है ? और उन्होंने कहा कि दूसरी जातियों के लिए भी यही बात है। मै उनसे इस बात का निश्चय न कर सका कि दूसरी जाति के लिए भी वही बात होने का क्या अर्थ है। मेरा खयाल है, इसका यह अर्थ है कि दूसरी जातियां भी अपनी ही जाति की जूरी या पंच होने की माग कर सकती हैं। इसका सम्बन्ध जूरी के ज़रिये होने वाले मुक़द्दमों मे है। मुझे भय है कि मैं इस सूत्र का समर्थन नहीं कर सकता।

मैं ऐसे अपवादों का समर्थन कर नहीं सकता—उनका साथ नही दे सकता। मेरा ख़याल है कि राष्ट्रीय सरकार को ऐसे प्रतिबन्धों से जकड़ रखना सम्भव नहीं है। आज भावी भारतीय राष्ट्र का अंग बनने वाली सब जातियों को सद्‌भाव से श्रीगणेश करना चाहिए; परस्पर-विश्वास से आरम्भ करना चाहिए, अन्यथा आरम्भ ही न करना चाहिए। यदि हमसे कहा जाय कि हमें उत्तरदायी शासन सम्भवतः मिल ही नहीं सकता तो वह स्थिति समझ में आ सकती है। किन्तु हमसे कहा जाता है कि ये सब सरक्षण, ये सब अपवाद क़ायम रहने ही चाहिएं तो वह स्वतन्त्रता और उत्तरदायी शासन न होगा, वह तो केवल संरक्षण होंगे। सरक्षण सारी सरकार को खा जायंगे। यदि ये सब संरक्षण दिये जाने वाले हों और यहां की सब बातें मूर्त्त अथवा व्यावहारिक रूप धारण करने वाली हों, और हमसे कहा जाय कि तुम्हें उत्तरदायी शासन मिलने वाला है; तो वह सर्वथा वैसा ही उत्तरदायी शासन होगा, जैसा कि जेल में क़ैदियों का होता है। जेल की कोठरियों में ताला लगाने और जेलर के रवाना होते ही क़ैदियों का पूर्ण स्वराज्य हो जाता है। २१ वर्ग फुट अथवा ७ फुट लम्बी ३ फुट चौड़ी इस कोठरी के अन्दर

कैदियों का पूरा स्वराज्य होता है, जिसमें जेलर अपने-अपने अधिकार के संरक्षणों को लिये हुए आराम से बैठे हों।

इसलिए अपने अंग्रेज मित्रों से मैं प्रार्थना करता हूँ कि उन्हें अपने अधिकारों से संरक्षण की मांग का यह विचार वापस ले लेना चाहिए। मैं यह सूचित करने का साहस करता हूँ कि मैंने जो दो सूत्र पेश किये हैं, वे स्वीकार कर लिये जायं। इन्हें आप जिस तरह चाहें काट-छांट कर ठीक कर सकते हैं। यदि इनकी शब्द-योजना सन्तोषजनक न हो तो खुशी से दूसरे शब्द सुझाइए। किन्तु मैं साहस के साथ कहता हूँ कि इन निषेधात्मक सूत्रों से बाहर, जिनमें कि आपके विरुद्ध कोई प्रतिबन्ध नही लगाया गया है, आपको नहीं जाना चाहिए—क्या मैं कहूँ कि आप इससे अधिक मांगने का साहस नहीं कर सकते ? इतना तो हुआ वर्तमान अधिकारों और भावी व्यापार के सम्बन्ध में।

श्री जयकर कल मुख्य उद्योगों के सम्बन्ध में बातचीत कर रहे थे और उसमें उन्होंने जो विचार प्रकट किये हैं मैं उनसे अपनी पूरी सहमति प्रकट करना चाहता हूं। महासभा की धारणा यह है कि मुख्य उद्योगो को सरकार स्वयं अधिकार में न ले, तो कम-से-कम उनके संचालन, व्यवहार और विकास में तो सरकार की आवाज का प्राधान्य होना ही चाहिए।

हिन्दुस्तान जैसे गरीब और पिछड़े हुए देश की इंग्लैण्ड जैसे अत्यधिक आगे बढ़े हुए उद्योग-प्रधान द्वीप से तुलना नही की जा सकती। मेरे विचार मे आज जो बात ग्रेट ब्रिटेन के लिए हितकारी है, वही भारत के लिए विषरूप है। भारत को अपना ही अर्थशास्त्र, अपनी ही राजनीति, अपनी ही उद्योगपद्धति और अन्य सब अपना ही विकसित करना है। इसलिए मुख्य उद्योगों के सम्बन्ध में मुझे भय है कि अकेले इंग्लैण्ड को ही नहीं, अन्य देशों को यह प्रतीत होगा कि उनके साथ न्याय नहीं हो रहा है। किन्तु एक सरकार के खिलाफ़ 'न्याय' का क्या अर्थ है, यह मैं नहीं जानता।

तटवर्ती व्यापार के लिए भी महासभा को उसे पूर्णरूप से विकसित करने के प्रति पूरी-पूरी सहानुभूति तो है ही; किन्तु यदि तटवर्ती व्यापार-सम्बन्धी बिल अर्थात् मसविदे मे यूरोपियन होने के कारण उनके साथ कुछ भेदभाव किया गया होगा तो मै यूरोपियनो से मिल जाऊगा और उस मसविदे का, अथवा अग्रेज़ों के साथ अंग्रेज होने के कारण किये गये भेदभाव के प्रस्ताव का विरोध करूगा। किन्तु अग्रेज़ों ने तो भारत मे अत्यन्त विशाल स्वार्थ जमा रखे हैं। बगाल मे मैंने नदी के मार्ग से काफी सफर किया है और वर्षो पहले एरावती का प्रवास भी किया है। इसलिए इस व्यापार के सम्बन्ध मे मै कुछ जानता हूँ। इन जबर्दस्त अग्रेजी मण्डलो ने रिआयतों, विशेषाधिकारो और सरकार की कृपा द्वारा जो कम्पनिया खडी करली हैं और जो व्यापार जमा लिया है, उसका कोई भी मुकाबला नही कर सकता।

चिटगाव और रगून के बीच एक नई स्थापित देशी कम्पनी के सम्बन्ध में आपमे से कुछ ने सुना होगा। इस कम्पनी के मुसलमान मालिक बडी मुश्किल से इसे चला रहे हैं। रगून मे वे मुझे मिले और पूछने लगे कि मुझसे कुछ हो सकता है या नही? इनके लिए मेरे हृदय में पूरा-पूरा सद्भाव तो उत्पन्न हुआ; किन्तु कुछ किया नही जा सकता था। क्या हो सकता था? उनके मुकाबले मे ज़बर्दस्त ब्रिटिश इण्डिया नेवीगेशन कम्पनी खडी है। उसने इस उगती हुई कम्पनी को दबाने के लिए भाव मे बिलकुल कमी करदी है, और लगभग कुछ भी किराया लिये बिना मुसाफिरो को ले जाती हैं। मैं इस प्रकार के एक-के-बाद-एक अनेक उदाहरण दे सकता हूं। इसलिए यह प्रश्न ही नही कि यह अंग्रेजी कम्पनी है। इस व्यवसाय को दबा देने के विचार से स्थापित हिन्दुस्तानी कम्पनी होती तो वह भी ऐसा ही करती। मान लीजिए कि कोई हिन्दुस्तानी कम्पनी पूजी ले जाती हो—जिस प्रकार आज ऐसे भारतीय मौजूद हैं, जो अपनी पूजी को भारत में लगाने की अपेक्षा अपना द्रव्य भारत से बाहर लगाते हैं, मान लीजिए कि राष्ट्रीय सरकार सही नीति

पर नही चल रही है, इस भय से भारतीयों का कोई विशाल मण्डल अपना सब मुनाफा ले जाकर अपनी रकम को सुरक्षित रखने के लिए उसे किसी दूसरे देश मे लगाता है। मेरे साथ इससे एक कदम और आगे बढकर मान लीजिए कि ये हिन्दुस्तानी मालिक अतिशय वैज्ञानिक सम्पूर्ण और त्रुटिरहित सगठन करने के लिए यूरोपियनों के समान जितना सम्भव हो सके, कौशल का उपयोग करे और इन असहाय कम्पनियो को अस्तित्व मे ही न आने दे, तो मै अवश्य अपनी आवाज उठाऊगा और चिटगाव जैसी कम्पनी के सरक्षण के लिए कानून बनाऊगा।

कुछ मित्र ऐरावती मे अपने जहाज तक न चला सकते थे। उन्होने मुझे इस बात का निश्चय कराने के लिए सुनिश्चित प्रमाण दिये कि यह बात सर्वथा अशक्य हो पडी थी। उन्हे परवाने (लाइसेन्स) मिल नही सकते थे और मनुष्य जो साधारण सुविधाए पाने का अधिकारी है, वे तक न मिल पाती थी। हममे से प्रत्येक जानता है कि पैसा क्या खरीद सकता है, सम्मान एव प्रतिष्ठा क्या खरीद सकती है और जब ऐसी प्रतीष्ठा कायम हो जाय जो कि सब नन्हे पौधो को मार डालती है तो ८२ वर्ष पूर्व कहे हुए सर जॉन गोर्स्ट के शब्दो मे, "ऊचे वृक्ष मात्र को उडा देना पडता है। ऊचे-ऊचे वृक्षो को इन नन्हे पौधो को नही कुचल डालने देना चाहिए।" तट अथवा किनारे के व्यापार के सम्बन्ध में यही वास्तविक मार्ग है। सम्भव है, इस सम्बन्धी मसविदे (बिल) की भाषा अटपटी हो। इसकी चिन्ता नही, किन्तु मेरा खयाल है कि इसका सार-तत्व सर्वथा सही है।

नागरिक की व्याख्या करना अत्यन्त कठिन काम है। आज मै महासभा की मनोदशा को जैसी समझता हू, उसे देखते हुए महासभा क्या उचित समझेगी अथवा मुझे क्या उचित प्रतीत होगा, यह मै आज इसी क्षण कहने की जिम्मेदारी अपने सिर पर नही ले सकता। यह बात ऐसी है, जिसमे सर तेजबहादुर सप्रू तथा अन्य मित्रो के साथ

बातचीत करना और उनके मन के विचार जानना चाहूगा; क्योंकि मुझे यह स्वीकार करना चाहिए कि इस चर्चा अर्थात् वादविवाद से मैं इस बात की तह तक पहुच नही सका हूँ। मैंने महासभा की स्थिति को सर्वथा स्पष्ट कर दिया है कि हमे जातीय भेदभाव की जरा भी आवश्यकता नहीं है। किन्तु इस स्थिति को स्पष्ट कर देने के बाद 'नागरिक' शब्द की व्याख्या के विषय मे महासभा के मत का तात्कालिक निर्णय करना शेष नही रह जाता। इसलिए 'नागरिक' शब्द के सम्बन्ध में मैं इतना ही कहूंगा कि अभी तुरन्त तो इस व्याख्या के सम्बन्ध मे मैं अपना मन स्थगित रखता हूँ।

इतना कहने के बाद यह बात कहकर मै अपना वक्तव्य समाप्त करता हू कि यूरोपियन मित्रों को सन्तोष करा सकने जैसा सर्व-सम्मत सूत्र खोज निकालने के सम्बन्ध मे मैं निराश नही हुआ हू। मै समझता हूं, जिस बातचीत मे भाग लेने का मुझे सौभाग्य मिला था, वह अब भी जारी रहने वाली है। मेरी उपस्थिति की आवश्यकता होगी तो इस छोटी समिति की बैठक मे मै अब भी हाजिर रहूगा। इसे बढ़ाकर इसका खानगीपन कम करने और इसका सर्व-सम्मत आधार खोज निकालने का ही विचार है।

मै फिर कहता हूं कि जहां तक मै समझ सका हूं, मैं ऐसी कोई तफ़सीलवार योजना का विचार नही कर सकता, जो विधान में शामिल की जा सके। विधान मे तो इसके जैसा कोई सूत्र ही दाखिल हो सकता है और वही सब अधिकारों का आधार माना जा सकता है।

आप देखेंगे कि इसमे सरकारी तन्त्र द्वारा कुछ किये जाने की कल्पना नहीं है। सघ-न्यायालय और सर्वोच्च-न्यायालय-सम्बन्धी अपनी आशा में प्रकट कर चुका हू। मेरे लिए सघ-न्यायालय ही सर्वोच्च-न्यायालय है; यही अपील का अन्तिम न्यायालय है, जिसके आगे कोई भी अपील न हो सकेगी; यही मेरी प्रिवी कौंसिल है और यही स्वतन्त्रता का आधार-स्तम्भ। यह वह अदालत है, जहा सब व्यक्ति ज़रा भी

शिकायत होने पर जा सकते हैं। ट्रांसवाल के एक महान कानून-विशेषज्ञ ने (और ट्रांसवाल तथा उसी तरह सारे दक्षिण अफरीका ने बहुत बड़े-बड़े कानून-विशेषज्ञ पैदा किये हैं) एक अत्यन्त कठिन मुकदमे के सम्बन्ध में एक बार मुझे कहा था—"यद्यपि इस समय भले ही आशा न हो; किन्तु मैं तुमसे कहता हूं कि मैंने अपने जीवन मे एक बात नज़र के सामने रक्खी है, अन्यथा मैं वकील ही नही हो सकता था। वह बात यह है—क़ानून हम वकीलों को सिखाता है कि ऐसा कोई भी अन्याय नहीं है, जिसका अदालत मे कुछ भी इलाज न मिलता हो और जो न्यायाधीश यह कहें कि कोई इलाज नहीं है तो उन न्यायाधीशों को तुरन्त ही न्यायासन से उतार देना चाहिए।" लार्ड चांसलर महाशय, आपके प्रति पूरा सम्मान रखते हुए भी, अपकी ही बात मै आपसे कहता हूं।

इसलिए मै चाहता हूं कि हमारे यूरोपियन मित्र इस बात का इतमीनान रखे कि जिस प्रकार सम्राट्-सरकार के सलाहकार मन्त्रियों की कृपा हमें प्राप्त न हो तो हमें खाली हाथों लौटाने की अपेक्षा करते हैं, उस तरह भावी सघ-न्यायालय उन्हें खाली हाथ न लौटावेगा। मैं अब भी आशा कर रहा हूं कि हम अपनी बात उन्हे सुना सकेंगे और उनके हृदय का सद्भाव जागृत कर सकेंगे। तब हम अपनी जेबों में कुछ वास्तविक एवं ठोस बात लेकर जाने की आश कर सकेंगे। परन्तु हम अपनी जेबों में कुछ वास्तविक एवं ठोस वस्तु लेकर जायं अथवा न जायं, मुझे आशा है कि यदि मेरे स्वप्न की-सी अदालत—संघ-न्यायालय—स्थापित हो तो यूरोपियन और अन्य सब—अल्पसख्यक जातियां—विश्वास रखें कि मुझ जैसा अल्पव्यक्ति कदाचित् भले ही उन्हें निराश करे; किन्तु यह अदालत उन्हें कभी निराश न करेगी।*

***भाषण के बाद नीचे लिखी बहस हुई—**

सर तेजबहादुर सप्रू—क्या म० गांधी यह सूचित करते हैं कि भावी

: ९ :

अर्थ

श्रीमन्, इस महत्वपूर्ण विषय पर दिये हुए आपके (लार्ड रीडिंग) व्याख्यान को मैंने अत्यन्त ध्यानपूर्वक और सम्मानसहित सुना। इस सम्बन्ध में मैंने पारसाल की सच-विधायक समिति की रिपोर्ट के वे पैरे जो आर्थिक समस्या के ऊपर लिखे गये हैं, पढ़े। मेरे विचार मे वे पैरे १८, १९ और २० हैं। मुझको यह राय प्रकट करने में अयत्त खेद है कि मै इन पैरों मे बताये गये प्रतिबन्धों से सहमत नहीं हूँ। जबतक कि हम ठीक तौर पर अपने आर्थिक बोझ को नहीं जान पाते, तबतक मेरी स्थिति और मैं समझता हूँ कि हम सबकी स्थिति अति कठिन होगी।

मै अब और अधिक साफ-साफ़ कहता हूँ कि यदि 'सेना' एक रक्षित विषय समझी जायगी तो मैं एक दृष्टिकोण से विचार करूंगा,

---

राष्ट्रीय सरकार प्रत्येक व्यक्ति के स्वामित्व अथवा मालिकाना अधिकार की जांच करेगी और यदि ऐसा हो तो यह मालिकाना अधिकार किसी खास मियाद के अन्दर मिला होना चाहिए या नहीं ? इस अधिकार की जांच के लिए वह कैसा तन्त्र स्थापित करना चाहते हैं, वे कुछ मुआवजा देना चाहेंगे अथवा राष्ट्रीय सरकार अपन अथवा बहुसंख्यक के विचार के अनुसार जिस मिल्कियत को अनुचित रूप से प्राप्त की गई समझेगी, उसे ज़ब्त कर लेगी।

गांधाजी—जहां तक मैं समझता हूं, यह काम सरकारी तन्त्र द्वारा न होगा, जो कुछ भी होगा खुले आम होगा। न्यायतन्त्र द्वारा ही होगा।

सर तेजबहादुर सप्रू—वह न्यायतन्त्र कैसा होगा ?

गांधीजी—अभी इस समय तो मैंने किसी मर्यादा का विचार नहीं

और यदि 'सेना' हस्तान्तरित विषय समझी जायगी तो मैं दूसरे दृष्टि-कोण से विचार करूंगा। अपनी राय प्रकट करने में एक भारी कठिनाई यह भी है कि महासभा का यह दृढ मत है कि भावी सरकार को जो कर्जा अपने ऊपर लेना पड़ेगा उसकी पक्षपात-रहित जांच-पड़ताल की जाय।

चार पक्षपात-रहित सदस्यो द्वारा तैयार की हुई मेरे पास एक रिपोर्ट है। उनमे से दो तो बम्बई की हाईकोर्ट के पुराने एडवोकेट-जनरल हैं, मेरा अभिप्राय श्री बहादुरजी तथा श्री भूलाभाई देसाई से है। तीसरे विचारक या उस कमेटी के सदस्य प्रोफेसर शाह हैं, जो अखिल भारतीय प्रसिद्धि प्राप्त किये हुए हैं और भारतीय अर्थशास्त्र की बहुत-सी बहुमूल्य पुस्तकों के रचयिता हैं। उस कमेटी के चौथे सदस्य श्री कुमारप्पा हैं, जिन्होने यूरोप की उपाधियां प्राप्त की हैं और जिनकी अर्थ-विभाग पर दी गई राये पर्याप्त मात्रा मे मानी जाती हैं और प्रभावशाली समझी जाती हैं। इन चार महानुभावों ने एक भारी रिपोर्ट पेश की है, जिसमें

किया है। मैं समझता हूं कि अन्याय के विरुद्ध कोई मर्यादा नहीं है।

सर तेजबहादुर सप्रू—इसलिए आपकी राष्ट्रीय सरकार के अन्तर्गत कोई भी मालिकाना हक सुरक्षित नहीं है न?

गांधीजी—हमारी राष्ट्रीय सरकार के अन्तर्गत इन सब बातों का निर्णय अदालत करेगी, और यदि इन बातों के सम्बन्ध में कोई अनुचित शंका होगी तो मैं समझता हूं, प्रत्येक उचित शंका का समाधान किया जा सकना सम्भव है। मुझे यह कहने में जरा भी हिचकिचाहट नहीं है कि सामान्यतः यह स्वीकार कर लिया जाने योग्य है जहां यह शिकायत हो कि अधिकार न्यायपूर्वक प्राप्त किये गये हैं, अदालतों को इन अधिकारों की जांच को छुट्टी होनी चाहिए। मैं आज शासन-सूत्र को हाथ में लेते समय यह नहीं कहूंगा कि एक भी अधिकार अथवा एक भी मालिकी के स्वत्व की जांच न करूंगा।

इन्होंने, जैसा कि मैं कहता हूँ, पक्षपात-रहित जांच के लिए सिफारिश की है। इस रिपोर्ट में यह भी दिखाया गया है कि बहुत-सा क़र्जा वास्तव मे भारत का नहीं है।

इस सम्बन्ध मे मैं अतिसम्मान सहित यह बतला देना चाहता हूँ कि महासभा ने यह कभी नही कहा है, जैसा कि उसके विरुद्ध कहा जाता है कि वह राष्ट्रीय क़र्जे की एक कौड़ी तक अस्वीकार करती है। महासभा ने जो-कुछ कहा है, वह यही है कि कुछ क़र्जा, जो भारत का समझा जाता है, भारत पर नही मढ़ा जाना चाहिए; परन्तु ब्रिटेन को वह क़र्जा लेना चाहिए। इन सब क़र्जों की एक विवेचनापूर्ण जांच इस रिपोर्ट मे मिल सकती है। उन बातो का पाठ करके इस समिति को थकाना नही चाहता। इन दो भागों का जो लोग भलीभांति अध्ययन करना चाहें, वे इस अध्ययन से बहुत लाभ उठा सकते हैं और कदाचित उनको पता लगेगा कि ऋण का कुछ भाग भारत के ऊपर नहीं मढ़ा जाना चाहिए। ऐसी स्थिति मे मै समझता हूँ कि यदि प्रत्येक अपनी वास्तविक स्थिति समझे तो एक निश्चित राय देना सम्भव है। परन्तु यहां मै यह बतलाने का साहस करता हूँ कि संघ-विधायक समिति में १८, १९ और २० पैरो में जिन प्रतिबन्धों अथवा सरक्षणों की ओर इशारा किया गया है, वे भारत को आगे बढ़ाने में सहायक होने के बजाय प्रत्येक क़दम पर उसकी उन्नति के बाधक ही होंगे।

श्रीमन्, आपने कहा था कि भारतीय मन्त्रियों में विश्वास की कमी का प्रश्न मेरे सम्मुख उपस्थित नही है। इसके विपरीत आपको यह आशा थी कि भारतीय मन्त्री दूसरे मन्त्रियों के समान ही भली-भांति कार्य करेंगे; परन्तु भारत की सीमा के बाहर भारत की साख (Credit) से आपका मतलब था। आपका यह भी मतलब था कि यदि बताये हुए संरक्षण नहीं रखे गये तो वे पूजी लगाने वाले, जो भारत में पूंजी लगाते थे और उचित ब्याज पर भारत को रुपया देते थे, सन्तुष्ट नहीं होंगे। यदि मुझको ठीक याद है तो आपने यह कहा था कि यदि यहां

से भारत मे रुपया लगाया गया अथवा रुपया भेजा गया तो यह नही समझना चाहिए कि यह रुपया भारत के हित में नही लगा है।

यदि मुझको ठीक-ठीक याद है तो आपने इन शब्दों का प्रयोग किया था, "स्पष्ट ही यह (ऋण) भारत का हितकर होगा।" मै इस सम्बन्ध मे किसी दृष्टान्त की प्रतीक्षा कर रहा था; परन्तु निःसन्देह आपने यह समझ लिया कि हम इन मामलों को या ऐसे उदाहरणो को जानते हैं। जबकि आप भाषण दे रहे थे, तब इस बात के विपरीत कुछ दृष्टान्त मुझे मालूम थे। मैंने अपने मन मे कहा कि मेरे अनुभव में ही कुछ दृष्टान्त ऐसे आये हैं, जिनसे मैं यह प्रमाणित कर सकता हूं कि इन दृष्टान्तों मे ब्रिटेन और भारत के हित एक-से नही थे; दोनो के हित एक-दूसरे से विपरीत थे, और इस कारण हम यह नही कह सकते कि ब्रिटेन से लिया गया ऋण सर्वदा भारत के लिए हितकारी था।

उदाहरण के तौर पर बहुत से युद्धों को ही ले लीजिए। अफगानिस्तान के युद्धों को ही देखिए। जबकि मै युवक था, मैंने स्वर्गीय सर जॉन के का लिखा हुआ अफगान-युद्धों का हाल बड़े कौतूहल से पढा था और मेरी स्मृति मे यह बात भलीभाति अंकित हो गई है कि इनमे के बहुत से युद्ध भारत के लिए हितकर नही थे। इतना ही नही, गवर्नर जनरल ने इन युद्धों मे प्रमाद से काम किया था। स्व० दादाभाई नौरोजी ने हम नवयुवकों को यह सिखाया था कि भारत में अंग्रेजों की अर्थ-नीति का इतिहास जहां रक्त-शोषक नही है, वहा कलुषतापूर्ण और प्रमाद से भरा हुआ है।

लार्ड चान्सलर ने यह चेतावनी दी थी और इस चेतावनी पर आपने भी ज़ोर दिया था कि वर्तमान समय मे आर्थिक समस्या बड़ी नाजुक है और इस कारण हममे से जो इस बहस में भाग लें उनको अत्यन्त सावधान रहना चाहिए, और बुरी रीति से इस विषय में प्रवेश नही करना चाहिए जिससे जिन कठिनाइयों का अर्थमन्त्री को सामना करना पड रहा है, उनमें बढ़ती हो जाय। इस कारण मैं विस्तार में

नही जाऊगा, परन्तु विनिमय दर के बढ़ाने के बारे मे एक बात कहे बिना मै नही रह सकता। मेरा अभिप्राय उस समय से है जब रुपये को १ शि० ८ पेंस से बढ़ा कर १ शि० ६ पैंस कर दिया गया था। यद्यपि उन भारतीयो ने, जिनका महासभा से कुछ सम्बन्ध नही था, इस बात का एकमत से विरोध किया था। वे सब अपना मत प्रकट करने मे स्वतन्त्र थे। उनमे से कुछ अर्थ-शास्त्र मे दक्ष थे और जो कुछ वे कहते थे उसको भली प्रकार समझते भी थे। यहा फिर यही पता लगता है कि विदेश के हित के लिए भारत का हित दबा दिया गया। इस बात के जानने के लिए किसी निपुण मनुष्य की आवश्यकता नही होती कि मूल्य मे गिरा हुआ रुपया किसानों के लिए सदा हितकारी होता है या नियमानुसार हितकारी होगा। मुझपर अर्थ-शास्त्रियों के यह स्वीकार करने का बहुत असर हुआ था कि यदि रुपया विलायत के नोट (Sterling) के साथ न जोड़ा जाकर स्वयं अपने ऊपर छोड़ दिया जाय तो इससे किसानो को बहुत लाभ होगा। वे अन्तिम छोर की ओर जा रहे थे और यह समझते थे कि यदि रुपया स्वयं अपनी दर स्थापित करने के लिए छोड दिया गया और गिरते-गिरते अपनी वास्तविक कीमत अर्थात् ६ या ७ पैंस पर आ गया तो भारत के लिए यह एक दुर्घटना होगी। व्यक्तिश मै यह नही समझ सका हूं कि इससे भारतीय कृषक को किसी प्रकार की हानि पहुंचेगी।

ऐसी दशा मे मै उन सरक्षणो को, जो भारतीय अर्थमन्त्री के अपना उत्तरदायित्व पालन करने के कार्य में रुकावट डालेंगे, नहीं मान सकता और यह उत्तरदायित्व पूर्णतया प्रजा के हित में होगा।

इस समिति का ध्यान मुझे एक बात की ओर और आकर्षित करना है। लार्ड चांसलर और आपने यद्यपि सावधानी के लिए कह दिया है तो भी मुझको यह अनुभव होता है कि यदि भारतीय अर्थ-विभाग का ठीक प्रबन्ध भारत के हित में हो, तो विदेश के बाजार में—अर्थात् लन्दन मे—दर मे इतनी तेजी-मन्दी न हो। इसके लिए मै कारण बताता हूं।

जब सर डेनियल हेमिल्टन के लेखों से मैं पहले-पहल परिचित हुआ तो मै कुछ आशंका और हिचकिचाहट से उनके पास पहुंचा। भारतीय अर्थ-समस्या के सम्बन्ध मे मैं कुछ नही जानता था। मेरे लिए यह विषय बिलकुल नया था। परन्तु उन्होंने उत्साह के साथ मुझे उन पत्रो को पढने के लिए, जो वे मुझे लगातार भेजते थे, खूब ज़ोर दिया। जैसा कि हम सब जानते हैं, उनकी भारत के साथ बहुत दिलचस्पी है। वे महत्त्वपूर्ण पदों पर भी रहे हैं और स्वयं एक योग्य अर्थशास्त्री हैं। वह आजकल अपने प्रदर्शित पथानुसार प्रयोग कर रहे हैं और जो लोग भारतीय अर्थ-समस्या को उनके दृष्टिकोण से समझना चाहेगे उन सब-के सामने उन्होंने एक प्रभावोत्पादक विचार रख दिया है। वह कहते हे कि भारत को सोने के माप की, चांदी के माप की या और किसी धातु के माप की आवश्यकता नहीं है। भारत के पास एक स्वयं अपनी ही धातु है और वह धातु उनके अनगिनत करोडों श्रमिकों के रूप मे है। यह सत्य है कि भारत के आर्थिक सम्बन्ध में ब्रिटिश सरकार अभी तक दिवालिया नही हुई है और अभी तक सब भुगतान करती रही है; परन्तु यह सब किस कीमत पर हुआ है? यह कृषक को हानि पहुंचा कर ही हुआ है, कृषक से धन छीन लिया गया है। यदि आर्थिक-समस्या को रुपयों मे समझने के बजाय अधिकारी-गण सर्वसाधारण के रूप में समझते तो मेरी क्षुद्र राय में वह भारत के मामले का प्रबन्ध अबतक की अपेक्षा कहीं अच्छा कर सकते। तब उनको विदेशी बाज़ार की शरण नही जाना पड़ता। प्रत्येक इस बात को मानता है और अंग्रेज अर्थशास्त्रियों ने यह कहा है कि सदा दस मे से नौ वर्षो मे व्यापार का शेष भारत के अनुकूल रहता है।

अर्थात् जब कभी भारत का व्यापार साल मे आठ आने या दस आने के बराबर ही रह जाता है तब भी व्यापार भारत के अनुकूल ही रहता है। उदार प्रकृति पृथिवी-माता से भारत अपना सब ऋण चुकाने के लिए और अपनी आवश्यक आयात से भी अधिक पैदा करता है।

यदि यह सत्य है और मैं कहता हूँ कि यह सत्य है तो भारत के समान देश को विदेशी पूंजीपति के सामने झुकना ठीक नहीं है। भारत को विदेशी पूंजीपति के सामने झुकाया गया है; कारण कि एक बहुत बड़े परिमाण में 'होम चार्जेज' के रूप मे भारत से धन बाहर गया है और भारत की रक्षा मे भीषण व्यय किया गया है। इन ऋणों के चुकाने में भारत सर्वथा असमर्थ है; परन्तु यह सब एक ऐसी नीति से चुकाये गये हैं, जिसकी स्थानापन्न कमिश्नर स्व० रमेशचन्द्र दत्त ने बहुत अच्छी तरह निन्दा की थी। मुझको मालूम है, इसी सम्बन्ध मे स्व० लार्ड कर्जन से उनका विवाद हो गया था और हम भारतीय इस नतीजे पर पहुंचे कि रमेशचन्द्र दत्त ही ठीक थे।

परन्तु मैं एक कदम और आगे बढ़ना चाहता हूँ। यह तो सबको मालूम है कि भारतीय कृषक साल मे छः महीने बेकार रहते है। यदि ब्रिटिश सरकार इस बात का प्रबन्ध कर दे कि वर्ष मे छः महीने ये लोग बेकार न रहें तो सोचो कि कितना धन पैदा किया जा सकता है! तो फिर क्यों हमको विदेशी बाजार की ओर झुकने की आवश्यकता पड़ेगी? मुझ साधारण मनुष्य को—जो सर्वसाधारण का ही विचार रखता है और जो वही अनुभव करना चाहता है जैसा कि सामान्य लोग—समस्त आर्थिक समस्या इसी रूप मे दिखाई पडती है। वे कहते हैं कि हमारे पास श्रमिक यथेष्ठ हैं, इस कारण हम किसी विदेशी पूंजी को नही लेना चाहते। जबतक हम श्रम करते हैं, तबतक हमारे श्रम से पैदा हुई वस्तुएं संसार चाहेगा और यह सत्य है कि समस्त संसार हमारे श्रम से पैदा हुई चीजें चाहता है। हम वही चीजें पैदा करेंगे, जिन्हें संसार स्वयं खुशी से लेगा। अत्यन्त प्राचीनकाल से भारत की ऐसी ही दशा रही है। इस कारण मैं उस डर का अनुभव नही करता, जो भारतीय अर्थ-समस्या के सम्बन्ध मे आपने बताया है। मेरी राय में जबतक हम अपने द्वार-रक्षकों पर पूर्ण नियन्त्रण और निर्बाध अपना बजट अपने काबू में न रखेंगे तबतक हम अपने ऊपर उत्तरदायित्व नहीं ले सकेंगे और

ऐसे भार को उत्तरदायित्वपूर्ण कहना अनुपयुक्त होगा।

वर्तमान समय में मेरी स्थिति ऐसी नही है कि मै अपने सरक्षण बताऊं। अपने सरक्षणो को मै उस समय तक नही बता सकता जबतक मै यह न जान जाऊं कि भारतीय राष्ट्र को पूर्ण जिम्मेदारी तथा मेना और सिविल सर्विस पर पूर्ण नियन्त्रण मिलेगा और भारत अपनी आवश्यकतानुसार सिविलियनो को तथा सिपाहियो को उन्ही शर्तों पर रखेगा, जो भारत जैसे दरिद्र राष्ट्र के लिए उपयुक्त होगी। जबतक मै इन सब बातों को न जान जाऊ तबतक मेरे लिए सरक्षण बताना प्रायः असम्भव है। जबतक कि कोई भारत की इस योग्यता मे कि वह अपना भार स्वयं उठाने के योग्य है और अपना कार्य शान्ति से चला सकता है, अविश्वास न करे तबतक, वास्तव मे, इन सब बातो पर ध्यान देने से यही मालूम होता है कि सरक्षणों की कोई आवश्यकता नही है। ऐसी परिस्थिति मे केवल एक ही खतरा, जो मै देख सकता हूं, यह हो सकता है कि ज्योंही हम कार्यभार अपने ऊपर लेगे त्योंही बड़ी अस्तव्यस्तता और विप्लव फैल जायगा। यदि अग्रेजो को यही डर है तो हमारे और उनके क्षेत्र भिन्न हैं। हम उत्तरदायित्व लेते हैं और मांगते हैं, क्योंकि हमें विश्वास है कि हम अपना शासन भली प्रकार चला लेगे और मैं तो समझता हूं कि अग्रेज-शासकों की अपेक्षा हम अपना शासन अधिक अच्छी तरह करेगे। इसका कारण यह नही है कि वे अयोग्य हैं। मैं यह मानने को तैयार हूँ कि अग्रेज हमसे अधिक योग्य और अधिक संगठन-शक्ति रखने वाले हैं, जिसकी शिक्षा हमको उनके पैरों के नीचे रहकर लेनी है। परन्तु हमारे पास एक बात है और वह यह कि हम अपने देश को और अपने लोगों को जानते हैं और इस कारण हम अपनी सरकार सस्ते में चला सकते हैं। सब झगड़ों से दूर रहने की हम कोशिश करेगे; क्योंकि हमारी आकांक्षाएं साम्राज्यवादी नहीं हैं। इस कारण, हम अफगानियों से अथवा और किसी राष्ट्र से युद्ध नहीं करेगे, वरन् हम मित्र-भाव

स्थापित करेंगे और उनको हमसे डरने की कोई बात नही होगी।

भारत की आर्थिक समस्या को सोचते हुए मेरे मन में यही आदर्श उपस्थित होता है। अतः आपको मालूम होगा कि मेरी कल्पना में भारतीय अर्थ-समस्या इतनी बड़ी या इतनी भयानक नहीं है जितना कि आप, लार्ड चांसलर अथवा अग्रेज-मंत्री, जिनसे मुझे इस प्रश्न पर बहस करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, इस (अर्थ-समस्या) को अपने मन मे समझते हैं। अतः ऊपर बताये हुए कारणो से मैं सम्मान-सहित यह कहना चाहता हूं कि इन सरक्षणों को और ब्रिटिश जनता और ग्रेट ब्रिटेन के जिम्मेदार लोगों के डर को मंजूर कर लेना मेरे लिए सभव नहीं है।

राष्ट्रीय सरकार जिन ऋणो को अपने सिर पर लेगी, उनकी जमानत उसी तरह की देगी जैसी कि एक राष्ट्र सम्भवतः दे सकता है। परन्तु इन पैराग्राफों में जैसी जमानतो के लिए लिखा है वैसी मेरी राय मे नही दी जा सकती। निःसन्देह कुछ ऋण ऐसा है, जिसको हमे अपने ऊपर लेना पडेगा और ग्रेट ब्रिटेन को चुकाना पड़ेगा। यदि यह मान लिया जाय कि हमने असावधानी से काम किया तो कागज पर लिखी हुई शर्तों का क्या मूल्य रह जायगा? अथवा मान लो, दुर्भाग्य से उस समय से, जब कि भारत अपना शासन अपने हाथ मे ले, बहुत-से बुरे वर्ष एक-के-बाद-एक आवे तो मै यही समझता हूँ कि कोई सरक्षण भारत से रुपया छीनने के लिए पर्याप्त नही होगा। ऐसी आपत्तिजनक परिस्थितियो के अदृश्य कारणो से किसी भी राष्ट्रीय सरकार को जमानत देना सम्भव नही होगा।

मै अपने भाषण को अत्यन्त दुःख के साथ खतम करता हूँ; क्योकि मुझे इतने अधिक अधिकारियों का, जिनको भारत के मामलों का अनुभव है और अपने उन देशवासियों का जो गोलमेज-परिषद् में सम्मिलित हुए हैं, विरोध करना पड़ता है। परन्तु यदि महासभा का प्रतिनिधि होते हुए मुझको अपना कर्त्तव्य पालन करना है तो किसी

की नाराजी का जोखिम उठाकर भी मुझको अपनी और महासभा के बहुत से सदस्यों की सम्मिलित राय प्रकट कर देनी चाहिए।*

: १० :

प्रान्तीय स्वराज्य

मैं अध्यापक लीस-स्मिथ को बधाई देता हूँ, क्योंकि उन्होंने यह चर्चा उठाई। अध्यक्ष महाशय, मै आपको भी बधाई देता हूँ कि आपने इस चर्चा की इजाज़त दी। मेरे खयाल में अध्यापक लीस-स्मिथ ने इस वादविवाद को शुरु करने का भार अपने ऊपर लेकर विलक्षण आशावादिता का परिचय दिया है। वे प्राणवायु की पिचकारी लेकर वैद्य के रूप में आये हैं और एक मृतःप्राय शरीर में प्राणवायु भरने की कोशिश कर रहे हैं। मैं यह नही कहता कि केन्द्रीय उत्तरदायित्व मे रहित प्रान्तीय स्वराज्य की धमकी की अफ़वाह के कारण हमारी यह समिति मुर्दा-सी हो गई है। मै तो अपने नम्रभाव से इस समिति की कारवाई के शुरू से ही चेतावनी के शब्द कहता रहा हूँ। मेरा तो इस वास्तविकता-विहीन वायु-मण्डल में दम घुट रहा था और मैने इन्ही शब्दो मे यह बात कह भी दी थी। सर तेजबहादुर सप्रू को तो यह अनुभव,

---

* भाषण समाप्त होने पर लार्ड रीडिंग ने कहा—

"मैं नहीं समझता कि आपने, जो कुछ मैंने कहा था, उसको ठीक तौर पर सदस्यों को बतलाया। सम्भव है कि कही हुई बातों का यह ग़लत बयान हो। अब मुझको यही कहना है कि अर्थ-सम्बन्धी अपने व्याख्यानों में मैं सबकुछ कह चुका हूं; परन्तु मैं यह नहीं चाहता कि मैं यह मान लूं कि उनका कोई उत्तर नहीं है।"

गांधीजी—निश्चय ही नहीं।

जैसा मुझे सयोगवश मालूम हुआ है, कुछ ही दिन से होने लगा है; उन्होने अपने दूसरे मित्रो और साथियों की तरह मुझपर भी, यदि मैं भी अपने को उनका साथी समझ लू, विश्वास करने की कृपा की है और अपने दिल की बात कही है।

सर तेज बहादुर उच्च सरकारी पदो पर रह चुके हैं। उन्हे शासन-सम्बन्धी मामलो का बहुत अनुभव भी है। उसके आधार पर उन्होने इस प्रान्तीय स्वराज्य नामधारी खतरे से खबरदार रहने की चेतावनी दी है। मै बहुधा भूले कर बैठता हूं, इसलिए उन्होने खास तौर पर मुझे लक्ष्य मे रखकर यह चेतावनी दी है। इसका कारण यह है कि मैंने प्रान्तीय स्वराज्य के सवाल पर कई अंग्रेज दोस्तों से—इस देश के जिम्मेदार सार्वजनिक व्यक्तियो से—चर्चा करने का साहस किया है। इसकी खबर सर तेजबहादुर को मिल गई थी और इसलिए उन्होंने मुझे काफी सचेत कर दिया है। यही कारण है कि हस्ताक्षर करने वालों मे आप मेरा भी नाम देखते हैं। परन्तु अध्यक्ष महोदय, मैंने हस्ताक्षर इस कागज़ पर नही किये है, जो आपके सामने पेश किया गया है, बल्कि ऐसे ही दूसरे पत्र पर किये है, जो दस दिन पहले अखबारों को भेजा गया है और प्रधान मन्त्री के नाम दिया गया है। जो बात मै यहां कहता हूँ यही मैंने उनसे कही थी कि भले ही अलग रास्तों से सही, वे और उनके बाद में बोलने वाले दूसरे लोग तथा मैं एक ही नतीजे पर पहुंचे हैं। 'जहां देवताओं को पैर रखते भी डर लगता है, वहां मूर्ख घुस पडते हैं।' शासन का कोई अनुभव न होते हुए भी मैंने सोचा कि यदि मेरी कल्पना में जो प्रान्तीय स्वराज्य है, वही मिलता हो तो मैं इस फल को हाथ में लेकर और उसे टटोल कर क्यों न देख लूं कि यह चीज़ वास्तव में मेरे काम की है भी या नही? मुझे अपने से विरुद्ध नीति रखने वाले मित्रों से मिलकर, उन्ही की विचारधारा में घुसकर, उनकी कठिनाइयां भी जानने का शौक है। मैं यह भी खोजना चाहता हूँ कि जो कुछ ये लोग दे रहे हैं उसमे शायद आगे चलकर वही चीज़ मिल

जाय जो मैं चाहता हूँ। इसी भावना से और इसी अर्थ मे मैंने प्रान्तीय स्वराज्य पर भी विचार करने का साहस किया था। परन्तु वादविवाद से मुझे तुरन्त पता लग गया कि प्रान्तीय स्वराज्य का अर्थ जो वे करते हैं वह वही अर्थ नही है जो मैं समझता हूँ। इसलिए मैंने अपने मित्रों से भी कह दिया कि वे मुझे अकेला छोड़ दें तो भी मेरा कुछ नहीं बिगड़ेगा; क्योंकि न तो प्रान्तीय स्वराज्य के मूर्खतापूर्ण विचार मे और न देश के लिए कुछ भी ले मरने की आतुरता से ही मैं देश के हितों का बलिदान करने वाला हूँ। मुझे चिन्ता है तो सिर्फ इतनी-सी कि जब मै अत्यन्त सशंक हृदय से इतने कोसों से आया हूँ, जब सरकार और इस परिषद् के साथ जी-जान से सहयोग करने का मेरा पूरा इरादा रहा है और जब मैंने मन, वचन और कर्म से सहयोग की भावना रखी है तो अपनी ओर से कोई बात उठा न रखू। इसलिए मैंने खतरे की सीमा में घुसकर भी प्रान्तीय स्वराज्य की बात करने से परहेज नहीं किया है। परन्तु मुझे विश्वास हो गया है कि आप अथवा ब्रिटिश-मंत्रिमण्डल भारतवर्ष को उतना प्रान्तीय स्वराज्य नही देना चाहते, जो मेरे जैसी मनोवृत्ति के आदमी को सन्तुष्ट कर सके, जिससे महासभा का समाधान हो जाय और जिसे स्वीकार करने को महासभा राज़ी हो जाय, फिर भले ही केंद्रीय दायित्व मिलने में देर लगे।

यहां इस समिति का थोड़ा समय लेने का जोखिम उठा कर भी अपनी बात साफ समझा देना चाहता हूँ; क्योंकि इस मामले मे भी मेरा तर्क ज़रा भिन्न प्रकार का है और मैं हृदय से चाहता हूं कि मेरी बात को ग़लत न समझा जाय। अतः मैं एक उदाहरण देता हूं। बंगाल को ही लीजिए। यह आज भारतवर्ष का एक ऐसा प्रान्त है, जिसमें गहरी अशान्ति है। मै जानता हूँ, बंगाल में एक क्रियाशील हिंसावादी दल विद्यमान है। आज यह भी सबको मालूम होना चाहिए कि मेरे दिल में हिंसावादी दल के प्रति किसी भी प्रकार से कोई सहानुभूति नही हो सकती। मैं सदा से मानता आया हूं कि हिसावाद सुधारक के लिए

बुरे-से-बुरा उपाय है, भारतवर्ष के लिए तो खास तौर पर घातक है; क्योंकि इसका बीज भारतभूमि में फूल-फल सकता ही नहीं। मेरा विश्वास है कि जो भारतीय युवक इस प्रकार के कामों को अच्छा समझ कर अपनी जानें दे रहे हैं, वे अपने प्राण बिलकुल व्यर्थ गंवा रहे हैं और जिस स्थान पर हम सब लोग पहुंचना चाहते हैं उस स्थान के एक अंगुल नज़दीक भी ये देश को नहीं ले जा रहे हैं।

मुझे इन सब बातों का यक़ीन है। परन्तु यक़ीन होने पर भी, मान लीजिए कि बंगाल को आज यदि प्रान्तीय स्वराज्य प्राप्त होता तो बंगाल क्या करता ? बंगाल सारे-के-सारे नज़रबन्द क़ैदियों को छोड़ देता। बंगाल—अर्थात् स्वायत्त-शासन-भोगी बंगाल हिंसावादियों का पीछा न करता, प्रत्युत बंगाल उनतक पहुंच कर उन्हें सन्मार्ग पर लाने का प्रयत्न करता। मुझे विश्वास है कि उनके हृदयों मे बैठ कर मै बंगाल से हिंसावाद का सफ़ाया कर सकता हूं।

परन्तु जिस सत्य को मैं अपने भीतर देखता हूं, उसे प्रकट कर देने के लिए मै एक क़दम और आगे बढ़ता हूं। यदि बंगाल स्वायत्त-शासन-भोगी होता तो अकेला वह स्वराज ही स्वास्तव में बंगाल से हिंसावाद को मिटा सकता था। इसका कारण यह है कि ये हिंसावादी मूर्खतावश यह समझते है कि उनके इन कृत्यों से ही स्वतन्त्रता जल्दी-से-जल्दी प्राप्त होगी। परन्तु जब वही स्वतन्त्रता बंगाल को दूसरी तरफ़ से मिल जाती तो फिर हिंसावाद के लिए गुंजायश ही कहां रह जायगी ?

आज एक हज़ार युवक ऐसे हैं, जिनमें से कुछ के लिए मै शपथ-पूर्वक कह सकता हूं कि हिंसावाद से उनका कोई सम्बन्ध नही ! फिर भी ये हज़ार-के-हज़ार युवक मुक़द्दमा चलाये बिना और अपराध साबित हुए बिना गिरफ़्तार कर लिये गये हैं। जहां तक चिटगांव का सम्बन्ध है, श्री सेनगुप्ता यहां मौजूद हैं। ये कलकत्ता के लार्ड मेयर, बंगाल व्यवस्थापिका सभा के सदस्य और बंगाल प्रान्तीय समिति के अध्यक्ष रह चुके हैं। वे मेरे पास एक रिपोर्ट लाये हैं। इस रिपोर्ट पर बंगाल

के सभी दलों के लोगों के हस्ताक्षर हैं। इसे पढ़कर दुःख हुए बिना नही रह सकता। इसका सार यह है कि चिटगांव में भी ग्रायरलैण्ड के से; किन्तु उनसे घटिया दर्जे के, अंधाधुन्ध ग्रत्याचारों की पुनरावृत्ति की गई है। और यह भी बात नहीं कि चिटगांव भारतवर्ष मे कोई ऐसी-वैसी जगह हो।

हमें अब यह भी मालूम हो गया है कि कलकत्ते में झंडा-प्रदर्शन किया गया, उस समय यहां सारी सैनिक शक्ति एकत्र की गई और उसे शहर के दस प्रधान बाज़ारों में घुमाया गया।

ये सब किसके खर्च से किया गया और इसका उपयोग क्या ? क्या इससे हिसावादी डर जायंगे ? मैं ग्रापको विश्वास दिलाता हूं कि वे नहीं डरेगे। तो फिर क्या इससे महासभा वाले सविनय-भग मे विमुख हो जायगे ? यह भी नही होने का। महासभा वाले तो इसके लिए प्रतिज्ञाबद्ध है। यही तो उनकी जाति का चिह्न है। उन्होंने इस प्रकार के कष्ट सहन करने का संकल्प कर लिया है। इस कारण वे इन बातों से डर जाने वाले नही हैं। ऐसे प्रदर्शनों पर हमारे बच्चे हसते हैं। हम उन्हे यह सिखाना भी चाहते हैं कि वे न डरा करे—तोप, बन्दूक और हवाई जहाज़ इत्यादि से भयभीत न हुग्रा करे।

ग्रब ग्राप समझ गये होंगे कि प्रान्तीय स्वराज्य की मेरी क्या कल्पना है। ये सब बातें उस दशा में ग्रसम्भव हो जायगी। न तो उस समय मैं किसी एक भी सिपाही को बगाल प्रान्त में घुसने दूंगा और न एक भी पैसा ऐसी फ़ौज पर खर्च होने दूंगा, जिसपर मेरा नियन्त्रण न हो। इस प्रकार के प्रान्तीय स्वराज्य में तो ग्राप बंगाल की ऐसी स्थिति की कल्पना ही नहीं कर सकते कि मै सब नजरबदों को मुक्त कर दूं और बंगाल के काले क़ानून रद्द कर दूं। यदि यही प्रान्तीय स्वराज्य है तो बंगाल में तो वैसी ही पूर्ण स्वाधीनता स्थापित हो जाती है जैसी मैंने नेटाल में विकसित होते देखी है। यह छोटा-सा उपनिवेश है; परन्तु इसका ग्रपना स्वतन्त्र ग्रस्तित्व था; इसकी

अपनी स्वयंसेवक सेना आदि थी। आप बंगाल या अन्य प्रान्तों को इस प्रकार का स्वराज्य नहीं देना चाहते। आप तो चाहते हैं कि केन्द्रस्थ सरकार ही शासन, नियन्त्रण आदि का काम भी करती रहे; परन्तु यह मेरी कल्पना का प्रान्तीय स्वराज्य नहीं है। इसीलिए मैंने आपसे कहा था कि यदि आप मुझे सच्चा प्रान्तीय स्वराज्य देना चाहते हों तो उसपर मैं विचार करने को तैयार हूँ। परन्तु मुझे विश्वास हो गया है कि वह स्वराज्य नही आ रहा है। यदि वह आनेवाला होता तो हमें इतनी लम्बी-चौड़ी कार्रवाई न करनी पड़ती और हमारा काम किसी दूसरे ही ढंग से चलता।

परन्तु मुझे एक बात का सचमुच और भी अधिक दुःख है। हम सब यहाँ एक ही उद्देश्य से लाये गये हैं। मुझे विशेषतः उस समझौते के द्वारा लाया गया है, जिसमें यह स्पष्ट लिखा है कि मैं केन्द्रीय शासन में सच्चे उत्तरदायित्व—सम्पूर्ण दायित्व वाला संघ-शासन, जिसमे संरक्षण हों किन्तु जो भारत के लिए हितकारी हों, विचार करने और लेने आ रहा हूँ। मैंने समय-असमय कहा है कि जो भी संरक्षण आवश्यक हों, उसपर मैं विचार करूंगा। मैं अध्यापक लीस-स्मिथ अथवा अन्य किसी के इस विचार से सहमत नही हूँ कि इस विधान-रचना के काम में इतने वर्ष—तीन वर्ष—लगने चाहिएं। उनके खयाल से प्रान्तीय स्वराज्य को १८ मास लगेंगे। मेरी मूर्खता कहती है कि इस दीर्घकाल की जरूरत नहीं। जब लोग संकल्प करलें, पार्लमेण्ट संकल्प करले, मन्त्रीगण संकल्प करलें और यहाँ का लोकमत संकल्प कर ले तो इन बातों में देर नही लगा करती। मैंने देखा है कि जब एकचित्त से विचार किया गया है तो इन बातों में समय नही लगा है। परन्तु मै जानता हूँ कि इस मामले में एकचित्त से विचार नही हो रहा है। अलग-अलग विभाग, अपने-अपने ढंग से और सभी शायद विरोधी दिशाओं मे काम कर रहे हैं। जब ऐसी बात है तो मुझे निश्चय प्रतीत होता है कि इस वादविवाद के पश्चात् भी केन्द्रस्थ दायित्व मिलना तो दूर रहा, इस परिषद् से कोई दूसरा तथ्यपूर्ण

परिणाम भी नहीं निकलने वाला है। मुझे यह देखकर पीडा होती है, आघात पहुंचता है कि ब्रिटिश मन्त्रियों का, राष्ट्र का और यहाँ आये हुए इन सब भारतीयों का इतना बहुमूल्य समय व्यर्थ गया। मुझे भय है कि इस प्राणवायु की पिचकारी से भी कोई लाभ नही होगा। मैं यह नही कहता कि और कुछ नही तो प्रान्तीय स्वराज्य ही हमारे सिर पर थोप ही दिया जायगा।

मुझे इस परिणाम का तो वास्तव में भय नही है। मुझे भय तो इससे कहीं अधिक भयानक चीज़ का है। वह यह कि सिवाय भयंकर दमन के भारत के पल्ले और कुछ भी पडने वाला नही है। मुझे उस दमन की फरियाद नहीं है। दमन से तो हमारा भला ही होगा। यदि दमन ठीक समय पर हो तो मैं तो उसे भी इस परिषद् का बहुत बढ़िया नतीजा समझूंगा। जो देश अपने ध्येय की ओर निश्चित संकल्प के साथ बढ रहा हो, ऐसे किसी भी देश की दमन से कभी कोई हानि नही हुई। ऐसे दमन से सचमुच प्राणवायु का संचार होता है, अध्यापक लीस-स्मिथ की पिचकारी से नही।

परन्तु मुझे डर इस बात का है कि जिस पतले धागे से मैंने पुनः अंग्रेज़ों और अंग्रेज़-मन्त्रियों से सहयोग का नाता बांधा था, वह टूटता दिखाई देता है। मुझे फिर से अपने-आपको कट्टर असहयोगी और सविनय अवज्ञाकारी घोषित करना पड़ेगा। मुझे वहां के करोड़ों मनुष्यों को असहयोग और आज्ञाभंग का सन्देश फिर से देना पड़ेगा। भले ही भारत पर कितने ही वायुयान मंडरायें और भारत में कितनी ही सैनिक मोटरें क्यों न भेज दी जायं। इनसे कुछ होना-जाना नहीं है। आपको मालूम नही है कि आज नन्हे-नन्हे बच्चों पर भी इन चीज़ों का कोई असर नही होता। हम उन्हे सिखाते हैं कि जब तुम्हारे चारों ओर गोलियों की वर्षा हो रही हो तो तुम हर्षोन्मत्त होकर नाचो मानो पटाखे छूट रहे हैं। हम उन्हें देश के लिए बलिदान का पाठ पढ़ाते हैं। मैं निराश नहीं हूँ। मैं नही समझता कि यहां कुछ न हुआ तो देश में अराजकता फैल जायगी। मेरा यह

खयाल नहीं है। जबतक काँग्रेस शुद्ध रहेगी और भारत की चारों दिशाओं में अहिंसा का बोलबाला रहेगा, तबतक अराजकता नहीं होगी। मुझे बहुधा कहा जाता है कि हिंसावाद की जिम्मेदारी कांग्रेस के सिर पर है; परन्तु मेरे पास इस बात के लिए प्रमाण है कि कांग्रेस के अहिंसात्मक ध्येय ने ही अबतक हिंसात्मक शक्तियों को रोक रखा है। मुझे खेद है कि अबतक हमे पूरी सफलता नही मिली है; परन्तु समय पाकर हमको सफलता की आशा है। यह बात नही है कि हिंसावाद से भारत को स्वाधीनता मिल जायगी। मै तो स्वतन्त्रता वैसी ही चाहता हूँ जैसी श्री जयकर चाहते हैं; बल्कि मैं उनसे अधिक सम्पूर्ण स्वतन्त्रता चाहता हूँ। मैं सर्व-साधारण के लिए पूरी आजादी चाहता हूं। मैं जानता हूं हिंसावाद से सर्व-साधारण का कोई लाभ नही हो सकता। सर्व-साधारण मूक और निःशस्त्र हैं। उन्हें मारना नही आता। मै व्यक्तियों की बात नही करता; परन्तु भारत के सर्व-साधारण की गति इस दिशा में कभी नहीं रही।

जब मै गरीबों का स्वराज्य चाहता हूं तो मुझे मालूम है कि हिंसावाद से कोई लाभ नही। अतः महासभा एक ओर तो ब्रिटिश सत्ता और उसकी ओर से कानून की आड़ मे होने वाले हिंसावाद से लोहा लेगी और दूसरी ओर युवकों के गैर-कानूनी आतंकवाद का विरोध करेगी। मेरे खयाल में इन दोनों के बीच का रास्ता उस सहयोग के द्वार का था, जो लार्ड अर्विन ने ब्रिटिश राष्ट्र के तथा मेरे लिए खोला था। उन्होंने यह पुल बनाया और मैंने समझा कि उसपर से सकुशल पार हो जाऊंगा। मेरा रास्ता सुरक्षित था और मै अपना सहयोग प्रदान करने को आ पहुंचा; परन्तु अध्यापक लीस-स्मिथ, सर तेज बहादुर सप्रू और श्री शास्त्रीजी ने कुछ भी कहा हो, इनके ध्यान में जो सीमित केन्द्रीय दायित्व है; उससे मेरा समाधान नही होगा।

आप सब जानते हैं, मैं तो ऐसा केन्द्रस्थ दायित्व चाहता हूं जिससे सेना और अर्थ का नियन्त्रण मेरे हाथ में आ जावे। मुझे मालूम है कि वह चीज़ मुझे यहां अभी नहीं मिलेगी और न कोई भी अंग्रेज आज वह

चीज़ देने को तैयार है। इसीसे मै जानता हूं कि मुझे वापस भारत जाकर देश को तपस्या के मार्ग पर अग्रसर होने का निमन्त्रण देना पड़ेगा। मैने अपनी स्थिति पूरी तरह साफ़ कर देने की इच्छा से ही इस वादविवाद में भाग लिया है। प्रान्तीय स्वराज्य के विषय मे मै जो बात घरू तौर पर मित्रों से कहता रहा था वही बात आज इस परिषद् मे मैने खुले तौर पर कह दी है। मैंने आपसे यह भी कह दिया है कि प्रान्तीय स्वराज्य का मैं क्या अर्थ समझता हूँ और मुझे किस चीज़ से वस्तुतः सन्तोष होगा? अन्त में मैं कह देना चाहता हूं कि मैं और सर तेजबहादुर सप्रू तथा अन्य सदस्य एक ही नाव मे बैठे है। मेरा विश्वास है कि जबतक सच्चा केन्द्रीय दायित्व न हो अथवा केन्द्र इतना कमज़ोर न कर दि जाय कि प्रान्त जो चाहे उससे कराले, तबतक सच्चा प्रान्तीय स्वराज्य होना असम्भव है। मुझे मालूम है कि आज आप इतना करने के लिए तैयार नही हैं। मै जानता हू कि सघ-शासन के स्थापित होने पर यह परिषद् कमजोर केन्द्र रखना पसन्द नही करेगी, इसकी कल्पना तो मजबूत केन्द्र की है।

परन्तु एक ओर विदेशी सत्ता द्वारा शासित बलिष्ठ केन्द्र और दूसरी ओर बलिष्ठ प्रान्तीय स्वराज्य—ये दोनो बाते एकसाथ नहीं मिल सकती। फिर भी मै महसूस करता हूँ कि प्रान्तीय स्वराज्य और दायित्व-पूर्ण केन्द्रीय शासन असल मे साथ-साथ चलने वाले है। फिर भी मैं कहता हूँ कि पुनः विचार के लिए मैने अपने मस्तिष्क का द्वार बन्द नही कर लिया है। यदि मुझे कोई समझा दे कि यह प्रान्तीय स्वराज्य वैसा ही है जिसकी मैने बंगाल के उदाहरण मे कल्पना की है तो मैं उसे हृदय से लगा लूगा।

—

: ११ :

हमारी बात

मैं नहीं समझता कि इस समय मैं जो कुछ कहूँगा, इससे प्रधान मण्डल के निर्णय पर कुछ असर पड़ना सम्भव है। बहुत करके वह निर्णय हो भी चुका है। लगभग एक पूरे द्वीप की स्वतन्त्रता का प्रश्न केवल दलीलों अथवा सलाह-मशविरे से कदाचित् ही सम्भव हो सकता है। सलाह-मशविरे का भी अपना हेतु होता है और वह भी अपना हिस्सा पूरा करता है; किन्तु वह खास-खास अवस्थाओं में ही। बिना ऐसी अवस्था के सलाह-मशविरे से कुछ नतीजा नही निकलता। किन्तु मैं इन सब बातों में नही जाना चाहता। प्रधान-मन्त्री महोदय, मैंने आपको इस परिषद् की प्रारम्भिक बैठक में जो शर्तें पढ़कर सुनाई थी, यथासम्भव उनकी हद ही रहना चाहता हूँ। इसलिए सबसे पहले तो मैं इस परिषद् के सामने पेश हुई रिपोर्टों के सम्बन्ध मे ही दो शब्द कहूँगा। आप इन रिपोर्टों में देखेंगे कि अधिकांश मे यह कहा गया है कि अमुक-अमक बड़ी बहुसख्या का मत है, कुछ ने इसके विपरीत मत प्रदर्शित किया है, इत्यादि। जिन पक्षों ने विरोधी मत दिया है, उनके नाम नहीं दिये गये हैं। जब में भारत में था, तब मैंने सुना था और मैं यहां आया तब मुझसे कहा गया था कि बहुसंख्यक के सामान्य नियम से कोई भी निर्णय न किया जायगा। और इस बात का उल्लेख मैं यहां यह शिकायत करने के लिए नहीं करता कि वे रिपोर्टें इस तरह तैयार की गई हैं, मानो सारा काम बहुमत के नियम से ही किया गया हो।

किन्तु इस बात का उल्लेख मुझे इसलिए करना पड़ा है कि इन अधिकांश रिपोर्टों मे आप देखेंगे कि एक विरुद्ध मत लिखा गया है और अधिकांश जगहों में यह विरोध दुर्भाग्य से मेरा है। प्रतिनिधि-बन्धुओं की राय से मतभेद प्रकट करते हुए मुझे प्रसन्नता न हुई थी;

किन्तु मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि यदि मैं यह मतभेद प्रकट न करूँ तो मैं महासभा का सच्चा प्रतिनिधि नहीं कहा जा सकता।

एक बात और है जो मैं इस परिषद् के ध्यान में लाना चाहता हूँ और वह यह कि महासभा के इस मतभेद का क्या अर्थ है? संग-विधायक समिति की एक प्रारम्भिक बैठक में मैंने कहा था कि महासभा, भारत की ८५ प्रतिशत से अधिक आबादी अर्थात् मूक श्रमिकवर्ग और अधपेट रहनेवाले करोड़ों की प्रतिनिधि होने का दावा करती है। किन्तु मैंने तो आगे जाकर यह भी कहा है कि यदि महाराजागण मुझे क्षमा करें, तो वह तो अपने सेवा के अधिकार से राजाओं की उसी तरह ज़मीदारों और शिक्षित-वर्ग की प्रतिनिधि होने का दावा करती है। मैं उस दावे को फिर पेश करता हूँ और इस समय उसपर विशेष जोर देना चाहता हूँ।

इस परिषद् के दूसरे सब पक्ष ख़ास-ख़ास वर्गों के प्रतिनिधि होकर आये हैं। अकेली महासभा ही सारे भारत की और सब वर्गों की प्रतिनिधि होने का दावा करती है। महासभा कोई सम्प्रदायिक संस्था नही है; किसी भी शक़ल या रूप में वह सब प्रकार की साम्प्र-दायिकता की कट्टर शत्रु है। उसके मन में जाति, रंग अथवा सम्प्र-दाय का कोई भेद नहीं है; उसके द्वार सबके लिए खुले हैं। सम्भव है कि उसने ध्येय को सदैव पूरा न किया हो। मैंने मनुष्य द्वारा संस्थापित एक भी ऐसी संस्था नहीं देखी, जिसने अपने ध्येय को सदैव पूरा किया हो। मैं जानता हूँ कि कई बार महासभा असफल हुई है। इसके आलोचकों की जानकारी के अनुसार तो वह इससे भी अधिक बार असफल हुई होगी। किन्तु कटु-से-कटु आलोचक को यह तो स्वीकार करना ही होगा और उन्होंने स्वीकार किया भी है कि भारतीय राष्ट्रीय महासभा दिन-प्रति-दिन विकसित होती जाने वाली संस्था है, उसका सन्देश भारत के दूरातिदूर गाँवों में पहुंचाया गया है और अवसर दिये जाने पर वह देश के ७,००,००० गांवों में रहनेवाली सर्व-साधारण

जनता पर के अपने प्रभाव का परिचय दे चुकी है।

और फिर भी मै देखता हूं कि यहां महासभा को अनेक पक्षों में से एक पक्ष गिना जाता है। मैं इसकी परवाह नही करता, मै इसे महासभा के लिए कुछ आपत्ति-रूप नही मानता; किन्तु जो कार्य करने के लिए हम यहां इकट्ठे हुए हैं, उसके लिए आपत्तिरूप अवश्य मानता हूँ। मै चाहता कि मैं ब्रिटिश-राजनीतिज्ञों और ब्रिटिश-मन्त्रियों को यह विश्वास करा सकता होता कि महासभा अपने निश्चय का पालन कराने मे समर्थ है तो कितना अच्छा होता! महासभा सम्पूर्ण भारत मे व्याप्त और सब प्रकार के साम्प्रदायिक भेदभाव से मुक्त एकमात्र राष्ट्रीय संस्था है। जिन अल्पसंख्यक जातियों ने यहां अपनी मांगें पेश की हैं और जो अथवा जिनकी ओर से हस्ताक्षर करने वाले भारत की ४६ प्रतिशत आबादी होने का—मेरे मत से अनुचित—दावा करते हैं, महासभा उन अल्पसंख्यक जातियों की भी प्रतिनिधि है ही। मैं कहता हूं कि महासभा इन सब अल्पसंख्यक जातियों की प्रतिनिधि होने का दावा करती है।

महासभा का दावा यदि स्वीकार कर लिया गया होता तो आज स्थिति कितनी भिन्न होती! मैं अनुभव करता हूं कि शान्ति के लिए और इस परिषद् में बैठे हुए अंग्रेज़ तथा भारतीय स्त्री-पुरुष दोनों के प्रिय उद्देश सिद्ध करने के लिए मैं महासभा का दावा विशेष आग्रह के साथ पेश करता हूं। मैं यह इस कारण से कहता हूं कि महासभा वलवान संस्था है, महासभा एक ऐसी संस्था है, जिसपर प्रतिद्वन्द्वी सरकार चलाने अथवा चलाने का विचार रखने का आरोप लगाया गया है; और एक तरह से मैं इस आरोप का समर्थन कर चुका हूं। यदि आप यह समझ लें कि महासभा का तन्त्र किस तरह चलता है तो जो संस्था प्रतिद्वन्द्वी सरकार चला सकती है और बता सकती है कि अपने पास किसी भी प्रकार का सैनिक बल न होते हुए भी विषम संयोगों में वह ऐच्छिक शासन-तन्त्र चला सकती है तो आप उसका स्वागत करेंगे।

किन्तु नहीं, यद्यपि आपने महासभा को आमन्त्रित किया है, फिर भी आप उसका अविश्वास करते हैं। यद्यपि आपने उसे आमन्त्रित किया है, फिर भी आप सारे भारत की ओर से बोलने के उसके दावे को अस्वीकार करते हैं। अवश्य ही संसार के इस किनारे पर बैठे हुए आप लोग इस दावे का विरोध कर सकते हैं, और यहां मैं इस दावे को साबित नही कर सकता। फिर भी आप मुझे उसे दृढ़ता से पेश करते हुए देख सकते हैं, इसका कारण यह है कि मेरे सिर पर जबर्दस्त जिम्मेदारी मौजूद है।

महासभा बागी मनोवृत्ति की प्रतिनिधि है। मैं जानता हूं कि सलाह-मशविरे के जरिये भारत की कठिनाइयों का सर्वसम्मत हल निकालने के लिए निमन्त्रित इस परिषद् में 'बाग़ी' शब्द का उच्चारण न करना चाहिए। एक-के-बाद एक अनेक वक्ताओं ने कहा है कि भारत को अपनी स्वतन्त्रता सलाह-मशविरे और दलीलों से ही प्राप्त करनी चाहिए और ग्रेट ब्रिटेन यदि भारत की मांगों को दलीलों से ही स्वीकार करेगा तो इसमें उसका अर्थात् ग्रेट ब्रिटेन का अत्यन्त गौरव समझा जायगा; किन्तु महासभा का मत सर्वथा ऐसा ही नही है। महासभा के पास दूसरा एक और मार्ग है जो कि आपको अप्रिय है।

मैंने कई वक्ताओं के भाषण सुने हैं और प्रत्येक वक्ता की बात को मैंने जहांतक सम्भव हो सका है पूरे ध्यान से और आदरपूर्वक समझने का प्रयत्न किया है। कई वक्ताओं ने कहा है कि यदि भारत में क़ानून-भंग, बलवा और हिसक अत्याचार आदि की प्रवृति पैदा हो जाय तो कितनी भयंकर मुसीबत आ पड़ेगी! मैं इतिहासज्ञ होने का ढोंग नही करता; कितु एक स्कूल के विद्यार्थी की तरह मुझे इतिहास के पर्चे में भी पास होना पड़ा था। मैंने उसमें पढ़ा कि इतिहास के पृष्ठ पर स्वतंत्रता के लिए लड़ने वालों के रक्त का लाल धब्बा लगा हुआ है। मेरी जानकारी में ऐसा एक भी उदाहरण नहीं, जिसमें राष्ट्रों ने कष्ट सहे बिना स्वतन्त्रता प्राप्त की हो। मेरे मत से, स्वतन्त्रता के

और स्वाधीनता के अन्ध-प्रेमियों ने खूनी का खंजर विष का प्याला, बन्दूक की गोली, भाला तथा संहार के इन सब शस्त्रास्त्रों और साधनों का आज तक उपयोग किया है। फिर भी इतिहासकारों ने उसकी निन्दा नही की है। मै हिसावादियों की वकालत करने के लिए खड़ा नही हुआ हूं। श्री गजनवी ने हिसावादियों की चर्चा की और उनमें कलकत्ता कार्पोरेशन को भी सम्मिलित किया। उन्होंने जब कलकत्ता कार्पोरेशन की घटना का उल्लेख किया तो उससे मुझे चोट पहुंची। वे यह बात कहना भूल गये कि कलकत्ता के मेयर ने, जो स्वय तथा कार्पोरेशन अपने महासभावादी सदस्यों के कारण जिस भूल में फंस गये थे, उसके लिए मुआवजा दिया है।

जो महासभावादी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से हिंसा को उत्तेजन देते हैं, मैं उनकी वकालत नही करता। महासभा के ध्यान में उक्त घटना के आते ही उसने उसके प्रतिकार का प्रयत्न आरम्भ किया। उसने तुरन्त ही कलकत्ता के मेयर से इस घटना का विवरण मांगा और मेयर सज्जन हैं, इसलिए उन्होने तुरन्त ही अपनी भूल स्वीकार कर ली और बाद में भूल-सुधार के लिए क़ानून से जो बात सभव थी उसपर अमल किया। इस घटना पर बोलकर मुझे इस परिषद् का अधिक समय नही लेना चाहिए। कलकत्ता-कार्पोरेशन की ओर से चलने वाली चालीस पाठशालाओं के विद्यार्थी जो गीत गाते बताये जाते हैं उसका भी श्री गज़नवी ने उल्लेख किया है। उनके भाषण मे और भी ऐसी भ्रमपूर्ण बातें थी, जिनके सम्बन्ध में मैं बोल सकता हूं; किन्तु उन-पर बोलने की मेरी इच्छा नहीं है। कलकत्ता के उच्च कार्पोरेशन के सम्मान और सत्य के प्रति आदर के लिए तथा जो लोग अपना बचाव करने के लिए यहां उपस्थित नहीं हैं, उनकी ओर से मैं ये दो प्रकट एवं स्पष्ट उदाहरण यहां दे रहा हूं। मैं एक क्षण के लिए भी यह बात नहीं मानता कि यह गीत कलकत्ता कार्पोरेशन की पाठशालाओं में कार्पोरेशन की जानकारी में सिखाया जाता था। मैं इतना अवश्य

जानता हूं कि गत वर्ष के भयंकर दिनों में ऐसी कई बातें की गई थीं, जिनके लिए हमें खेद है और जिनके लिए हमने मुआवज़ा दिया है।

यदि कलकत्ते मे हमारे बालकों को वह गीत गाना सिखाया गया हो, जो श्री गज़नवी ने गाया है तो मैं उनकी ओर से क्षमा मांगने के लिए यहां मौजूद हूं। किन्तु इतना मैं चाहूंगा कि इन पाठशालाओं के शिक्षकों ने यह गीत कार्पोरेशन की जानकारी और प्रोत्साहन से सिखाया है, यह बात साबित की जाय। महासभा के विरुद्ध इस प्रकार के आक्षेप अगणित बार लगाये जा चुके हैं और अगणित बार महासभा उनका उत्तर दे चुकी है। फिर भी इस अवसर पर मैंने इसका उल्लेख किया है और वह भी यह बताने के खयाल से किया है कि स्वतन्त्रता के लिए लोग लड़े हैं, उन्होने अपने प्राण गंवाये हैं और जिन्हें पदच्युत करना चाहते थे उन्हें मारा है और उनके हाथों मारे गये हैं।

अब महासभा रंगमच पर आती है; और इतिहास में अपरिचित एक नवीन उपाय—सविनय भग—खोज निकालती है, और उसका अनुकरण करती आती है। किन्तु मेरे सामने फिर एक पत्थर की दीवार आकर खड़ी होती है और मुझसे कहा जाता है कि दुनिया की कोई भी सरकार इस उपाय—इस पद्धति—को सहन नहीं कर सकती। अवश्य ही सरकार खुली बग़ावत को सहन नही कर सकती, किसी भी सरकार ने सहन नही किया है। सविनय भंग को भी कोई सरकार सहन नही कर सकती है। किन्तु सरकारों को इस शक्ति के आगे झुकना पड़ा है, जिस प्रकार कि ब्रिटिश सरकार को आज से पहले करना पड़ा है। और महान् डच सरकार को भी आठ वर्ष कसौटी के बाद अनिवार्य स्थिति के सामने झुकना पड़ा था। जनरल स्मट्स बहादुर सेनापति हैं, महान् राजनीतिज्ञ हैं और अत्यन्त कठिन काम लेने वाले भी हैं। फिर भी जो निरपराध स्त्री-पुरुष केवल अपने आत्म-सम्मान की रक्षा के लिए लड़ते थे; उन्हें मार डालने की कल्पनामात्र से वे कांप उठे थे। और सन १९०८ मे जिस चीज़ के स्वयं कभी न देने की उन्होंने प्रतिज्ञा की

थी और जिसमें जनरल बोथा का उन्हें सहारा था, वही चीज उन्हें सन् १९१४ में इन सत्याग्रहियों को पूरी तरह तपाने के बाद, देनी पड़ी। भारत में लार्ड चेम्सफोर्ड को यही करना पडा था। बम्बई के गवर्नर को बोरसद और बारदोली मे यही करना पड़ा था। प्रधानमन्त्री महोदय, मै आपको सूचित करना चाहता हूं कि इस शक्ति का मुक़ाबला करने का समय अब चला गया है; और इसके आगे आज पसन्दगी पड़ी है जुदे मार्ग ग्रहण की बात है, इस बोझ से में दबा जाता हूँ। अपने देश के भाई-बहनों और उसी प्रकार बालकों को भी यदि इस अग्नि-परीक्षा में डाले बिना कुछ हो सकता हो तो मैं गाढ़ निराशा में भी आशा रखूंगा। अपने देश के लिए सम्मानपूर्ण समझौता प्राप्त करने के लिए शक्ति भर सब प्रकार के प्रयत्न कर छोड़ूंगा। इन सबको इस प्रकार के संग्राम में फिर उतारने में मुझे सुख अथवा आनन्द नहीं है; किन्तु यदि हमारे भाग्य मे अधिक अग्नि-परीक्षा लिखी ही हो तो मैं इसमें बड़ी प्रसन्नता के साथ प्रवेश करूंगा। मुझे बड़े-से-बड़ा आश्वासन यह है कि मुझे जो सत्य प्रतीत होता है, वही मैं करता हूं; देश को जो सत्य प्रतीत होता है, वही वह करता है; और देश को यह जानकर अधिक संतोष होगा कि वह प्राण लेता तो नही, पर देता है; वह अंग्रेज़ लोगों को सीधा कष्ट नही देता, वरन् स्वयं कष्ट सह लेता है। प्रोफेसर गिलबर्ट मरे ने मुझसे कहा था—उनका यह वचन मैं कभी न भूलूंगा, मैं केवल उसका अनुवाद करता हूं—कि 'आप एक क्षण के लिए भी यह नहीं मानते कि जब आपके हजारों देशबन्धु कष्ट सहन करते हैं, तब हम अग्रेज़ लोग दुःखी नही होते, क्या हम इतने हृदय-शून्य है?' मै ऐसा नही मानता। मै अवश्य जानता हूं कि आप भी दुःखी होते हैं। किन्तु मैं चाहता हूं कि आप दुःखी हों, क्योंकि मुझे आपका हृदय पिघलाना है; और जब आपका हृदय पिघलेगा, तभी सलाह-मशविरे का उपयुक्त समय आवेगा। सलाह-मशविरे मे सम्मिलित होने के लिए, इतनी दूर आया हूं, वह इसलिए कि मझे ऐसा प्रतीत हुआ

कि आपके देशबन्धु लार्ड अर्विन ने अपने आर्डिनेन्सों के जरिये हमें खूब तपा देखा है, उन्होंने पूरा सबूत पा लिया है कि भारत के हज़ारों स्त्री-पुरुष और बालकों ने कष्ट सहन किया है और आर्डिनेन्स हों तो क्या, लाठी बरसे तो क्या, आगे बढता हुआ तूफान इनमें किसीसे भी रुकने वाला नही, आज़ादी के लिए तडपते भारत के स्त्री-पुरुषों के हृदय में जो प्रबल भावनाएं जाग्रत हो गई है, उनके प्रवाह को रोका नही जा सकता।

अभी समय बिलकुल गया नहीं है; इसलिए मै चाहता हूं कि महासभा जिस बात के लिए खडी है, आप उसे समझें। मेरा जीवन आपके हाथ मे है। कार्य-समिति के, महासमिति के सब सदस्यों का जीवन आपके हाथ मे है। किन्तु स्मरण रखिए कि इन करोड़ों मूक प्राणियों का जीवन भी आपके हाथ मे है। मेरा बस चले तो मै इन प्राणियों को नहीं होम देना चाहता। इसलिए स्मरण रखिए कि यदि संयोग से मैं कोई सम्मानपूर्ण समझौता करा सकूं तो उसके लिए कितना भी बलिदान क्यों न करना पडे मै उसे बहुत न समझूंगा। महासभा के हृदय में यही भावना काम कर रही है कि भारत को सच्ची स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए। उसकी यह भावना यदि मैं आपमें भर सकूं तो आप मुझमे समझौते की बड़ी-से-बड़ी भावना भरी पावेंगे। स्वतन्त्रता को आप कुछ भी नाम दें गुलाब को दूसरा कोई भी नाम दे तो भी वह उतनी ही सुगन्धि देगा; किन्तु मैं जो चाहता हूं वह स्वतन्त्रता का असली गुलाब होना चाहिए, नकली नहीं। यदि आपके और उसी तरह महासभा के, इस परिषद् के और उसी तरह अंग्रेज़ जनता के मन में इस शब्द का एक ही अर्थ हो तो आप समझौते के लिए पूरा-पूरा अवसर पा सकेंगे; महासभा को समझौते के लिए सदैव तत्पर पावेंगे। किन्तु जबतक यह एकमत नहीं होता, जबतक जिस शब्द का आप, मैं और सब प्रयोग करते हैं, उसकी एक ही व्याख्या, एक ही अर्थ नहीं होता, तब-तक कोई समझौता सम्भव नही। हम जिन शब्दों का प्रयोग करते हैं,

उनकी प्रत्येक के मन में जुदी-जुदी व्याख्या हो तो समझौता हो ही किस तरह सकता है? प्रधानमन्त्री महोदय, मैं अत्यन्त नम्रतापूर्वक कहना चाहता हूं कि ऐसा आधार ढूंढ़ निकालना असम्भव है जहां कि आप समझौते की भावना का प्रयोग कर सकें। मुझे अत्यन्त दुःख के साथ कहना पड़ता है कि इन सब उकता देने वाले सप्ताहों मे हम जिन शब्दों का प्रयोग कर रहे थे, उनकी कोई सर्व-सम्मत व्याख्या मे अभी तक ढूंढ़ न सका।

गत सप्ताह एक शंकाशील सज्जन ने मुझे लन्दन का क़ानून बताकर कहा, "आपने 'उपनिवेश' (Dominion) की परिभाषा देखी है ?" मैंने 'उपनिवेश' की व्याख्या पढी और उसमें यह देखकर कि 'उपनिवेश' शब्द की पूरी व्याख्या की गई है और सामान्य व्याख्या के सिवा विशेष व्याख्या की गई है, स्वभावतः मैं किसी उलझन मे नही पडा अथवा मुझे कुछ आघात न पहुंच सका। इसमें इतना ही कहा गया था कि "उपनिवेश शब्द में आस्ट्रेलिया, दक्षिण अफरीका, कनाडा आदि और अन्त में आयरिश फ्री स्टेट का समावेश होता है।" मेरा ख़याल नहीं है कि मैने उसमें इजिप्ट का नाम देखा हो। फिर उस सज्जन ने कहा, "आपके 'उपनिवेश' का क्या अर्थ है, यह आपने देखा?" मुझपर इसका कुछ असर न पड़ा। मेरे औपनिवेशिक अथवा पूर्ण स्वराज्य का क्या अर्थ किया जाता है, मुझे इसकी परवा नही। एक तरह से मेरा हृदय हलका हो गया।

मैंने कहा—मैं अब औपनिवेशिक झगड़े से बरी हूं, क्योकि मै उससे अलग हो गया हूं। मुझे तो पूर्ण स्वतन्त्रता चाहिए। और फिर भी कई अंग्रेज़ों ने कहा—हां, तुम्हें पूर्ण स्वतन्त्रता मिल सकती है, किन्तु पूर्ण स्वतन्त्रता का अर्थ क्या है ? और फिर हम जुदी-जुदी व्याख्याओं पर आगये।

आपके एक बड़े राजनीतिज्ञ मेरे साथ बातचीत करते थे। उन्होंने कहा—सच कहता हूं, मैं नहीं जानता था कि पूर्ण स्वतन्त्रता का आप

यह अर्थ करते हैं। उन्हें जानना चाहिए था, फिर भी वे नहीं जानते थे और वे क्यों नही जानते थे, वह मैं आपको बतलाता हूं। जब मैंने उनसे कहा कि "मैं साम्राज्य में साझेदार नहीं रह सकता ", तब उन्होंने कहा—अवश्य, यह तो इसका तर्क-सिद्ध अर्थ है। मैने कहा—पर मुझे तो साझेदार होना है। मुझे यदि जबर्दस्ती साझेदार बनाया जाय तो मैं हर्गिज न बनूंगा; मुझे तो स्वेच्छा से ग्रेटब्रिटेन का साझेदार बनना है, मुझे अंग्रेज जनता का साझेदार बनना है। किन्तु जो स्वतन्त्रता अंग्रेज जनता भोगती है, उसीका मुझे भोग करना है, और मै इस साझेदारी में केवल भारत के अथवा एक-दूसरे के लाभ के लिए शामिल नहीं होना चाहता; मैं यह साझेदारी इसलिए चाहता हूं कि संसार के बुभुक्षित लोग जिस बोझ के नीचे कुचले जा रहे हैं, वे उसके भार से मुक्त हों।

इस बातचीत को हुए दस-बारह दिन हो गये। यह बात विचित्र तो मालूम होगी, किन्तु मुझे एक दूसरे अंग्रेज की तरफ से चिट्ठी मिली। इन्हे आप भी पहचानते हैं और उनके प्रति आदर-भाव रखते हैं। अन्य अनेक बातों के साथ उन्होंने लिखा है, "मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि मनुष्यजाति की सुख-शांति का आधार अपनी मित्रता पर निर्भर है." और मानो मैं न समझता होऊं इस तरह वे लिखते है—आपकी और मेरी जनता की मित्रता पर। आगे जो उन्होंने लिखा है, वह भी मुझे आपको पढ़-सुनाना चाहिए—और सच्चे अंग्रेज सब भारतीयों मे केवल आपको ही चाहते हे और समझते है।

उन्होंने कोई शब्द खुशामद में बरबाद नही किया है और मै नहीं समझता कि उन्होंने अन्तिम वाक्य मेरी खुशामद के लिए लिखा है। मैं किसीकी खुशामद मे नही आ सकता। इस चिट्ठी मे ऐसी कई बातें हैं, जो यदि मैं आपको सुनाऊं तो कदाचित् आप इस वाक्य का अर्थ अधिक समझ सकें। किन्तु मैं आपसे इतना ही कहता हूं कि अन्तिम वाक्य उन्होंने मुझे खुद को ध्यान में रख कर नही लिखा है। मैं किसी गिनती

मे नही हूँ और मैं जानता हूं कि कई अंग्रेज़ों की दृष्टि में मैं किसी गिनती मे नही हूं ; किन्तु कुछ अंग्रेज़ मुझे किसी गिनती मे समझते हैं, क्योकि मै एक राष्ट्र के, एक प्रभावशाली संस्था के प्रतिनिधि की हैसियत से आया हूँ, इसीलिए उन्होंने इन शब्दों का प्रयोग किया है।

किन्तु प्रधानमन्त्री महोदय, यदि मैं कोई भी व्यावहारिक आधार पा सकू तो समझौते के लिए काफी अवसर है। मैं मैत्री के लिए तरस रहा हूँ। मेरा कार्य गुलामों के मालिक और ज़ालिम की जड़ उखाड़ना नही है। मेरी नीति मुझे ऐसा करने से रोकती है, और आज महासभा ने मेरी तरह इस नीति को धर्म की तरह तो नही, किन्तु व्यावहारिक रूप मे स्वीकार किया है। क्योकि महासभा का विश्वास है कि भारत के लिए—३५ करोड़ के राष्ट्र के लिए—यही योग्य और सर्वोत्तम मार्ग है।

३५ करोड की आबादी के राष्ट्र को खूनी के खंजर की आवश्यकता नही, उसे तलवार, भाला अथवा गोली की आवश्यकता नहीं, उसे केवल अपने सकल्प की जरूरत है; 'नही' कहने की शक्ति की आवश्यकता है और वह राष्ट्र आज 'नही' कहना सीख रहा है।

किन्तु यह राष्ट्र करता क्या ? अंग्रेजों को एकदम अलग करता है ? नही। उसका उद्देश्य आज अग्रेजों का हृदय-परिवर्तन करना है। इग्लैण्ड और भारत के बीच का यह बन्धन मैं तोड़ना नही चाहता; किन्तु उसका रूप बदलना चाहता हूँ। मै उस गुलामी को पूर्ण स्वतन्त्रता के रूप मे बदलना चाहता हूँ। इसे आप पूर्ण स्वतन्त्रता कहे अथवा दूसरा कुछ भी नाम दे, मै उस शब्द के लिए झगड़ने नही बैठूगा। और यदि मेरे देशवन्धु उस शब्द को स्वोकार कर लेने के लिए मेरा विरोध करे तो जबतक आपके सुझाये हुए शब्द में मेरे अर्थ का समावेश होता होगा, तबतक मैं इस विरोध को सहने के लिए भी समर्थ हो सकूंगा। इसलिए मुझे अगणित बार आपका ध्यान इस बात की ओर आकर्षित करना पड़ता है कि जो संरक्षण आपने सुझाये हैं, वे सर्वथा असन्तोषजनक हैं। वे भारत के हित में नही हैं।

वाणिज्य और 'उद्योग-संघों' के तीन विशेषज्ञों ने अपने-अपने जुदे तरीके से, अपनी विशेषज्ञता के अनुभव से बताया है कि जहाँ देश की ३० फ़ी सदी आय गिरवी रखदी गई है, जिसके कि वापस आने की कोई संभावना नहीं, वहाँ किसी भी उत्तरदायी मंत्रिमण्डल के लिए देश का शासनतन्त्र चलाना असम्भव बात है। मेरी अपेक्षा कहीं अधिक अच्छी तरह, अपने प्रचुर ज्ञान से, उन्होंने बताया है कि इन आर्थिक संरक्षणों का भारत के लिए क्या अर्थ है। ये भारत को सर्वथा अपाहिज अथवा अपंग बना देनेवाले हैं। इस परिषद् में आर्थिक संरक्षणों की चर्चा हुई है; किन्तु इसमें सेना—रक्षण—के प्रश्न का भी समावेश हो जाता है। फिर भी, यद्यपि मैं कहता हूँ कि जिस रूप में ये संरक्षण पेश किये गये हैं, उस रूप में वे असन्तोषजनक हैं, तथापि बिना किसी हिचकिचाहट के मैंने यह भी कहा है और बिना किसी हिचकिचाहट के फिर कहता हूँ कि जो सरक्षण भारत के लिए हितकर सिद्ध कर दिये जायंगे, उन्हें देने के लिए, उन्हे स्वीकार करने के लिए महासभा वचनबद्ध है।

सघ-विधायक समिति की एक बैठक में मैने बिना किसी सकोच के इसी स्वीकृति का विस्तार किया था और कहा था कि ये संरक्षण ग्रेट ब्रिटेन के लिए भी लाभप्रद होने चाहिएं। अकेले भारत के लिए लाभप्रद और ग्रेट ब्रिटेन के वास्तविक हित के लिए हानिकारक हों, ऐसे संरक्षण मुझे नहीं चाहिए। भारत के कल्पित हितों का बलिदान करना होगा। ग्रेट ब्रिटेन के कल्पित हितों का बलिदान करना होगा। भारत के अवैध हितों का बलिदान करना होगा, ग्रेट ब्रिटेन के अवैध हितों का भी बलिदान करना होगा। इसलिए मैं फिर दुहराता हूँ कि यदि हम एक ही शब्द का एक ही सा अर्थ करते हों तो मैं श्री जयकर के साथ, सर तेजबहादुर सप्रू के साथ और इस परिषद् मे बोलने वाले अन्य प्रसिद्ध वक्ताओं के साथ सहमत हो जाऊंगा।

इतने सब परिश्रम के बाद हम सब ठीक-ठीक एकमत पर आ गये हैं

इस बात में मै उनके साथ राजी हो जाऊंगा ; किन्तु मेरी निराशा और मेरा दुःख यह है कि मै इन शब्दों को इसी अर्थ में नही देख रहा हूँ। मुझे भय है कि संरक्षणो का श्री जयकर ने जो अर्थ किया है, वह मेरे अर्थ से जुदा है और उदाहरण के तौर पर, कौन जाने कदाचित् सर सेम्युअल होर के मन मे उसका दूसरा ही अर्थ हो। सच पूछा जाय तो हम अभी अखाडे मे उतरे ही नही हैं। मै इतने दिनों से वास्तव मे अखाडे मे उतरने के लिए आतुर हूँ, तडप रहा हूँ और मैने सोचा—हम अधिकाधिक निकट क्यो नही आते और हम अपना समय वाक्पटुता मे, वक्तृत्व और वादविवाद तथा छोटी-छोटी बातो मे विजय प्राप्त करने मे क्यों बरबाद कर रहे है ? भगवान जानता है कि मुझे अपनी खुद की आवाज़ सुनने की जरा भी इच्छा नही है। ईश्वर जानता है कि किसी भी वाद-विवाद मे भाग लेने की मेरी जरा भी इच्छा नही है। मै जानता हूँ कि स्वतन्त्रता इससे कठिन वस्तु है, और मै जानता हूँ कि भारतवर्ष की स्वतन्त्रता उससे भी अधिक कठिन है। हमारे सामने ऐसी समस्याएं हैं, जो किसी भी राजनीतिज्ञ को चक्कर मे डाल सकती हैं। हमारे सामने ऐसी समस्याए है जो अन्य राष्ट्रो के सामने न आई थी अथवा जिनका उन्हे हल न करना पडा था। किन्तु मै उनसे हारता नही हूँ। भारत की आबोहवा मे पले हुए लोग उनसे हार नही सकते। ये समस्याए हमारे साथ लगी हुई है, जिस प्रकार हमे अपने प्लेग को दूर करना है; हमे अपने मलेरिया-ज्वर की समस्या को सुलझाना है; आपको जो न करना पडा, वह साप, बिच्छू, बन्दर, बाघ और सिह की समस्याओं का हल हमे करना है। हमे इन समस्याओ का हल करना है, क्योकि हम उस आबोहवा मे पले है।

इनसे हम घबराते नही। कैसे भी क्यो न हो, पर इन जहरीले कीडे-मकौडो और तरह-तरह के जानवरो के प्रहारो का मुक़ाबला करते हुए भी हम अपने अस्तित्व को आज भी क़ायम रक्खे हुए है। इसी प्रकार इस समस्या का भी हम मुकाबला करेगे और अन्ततोगत्वा कोई-न-कोई

रास्ता निकाल ही लेगे। परन्तु आज तो आप और हम एक गोलमेज के आस-पास इसलिए एकत्र हुए हैं कि आपस मे मिल-जुल कर कोई संयुक्त योजना ढूढ निकाले, जो कि अमल मे लाई जा सके। कृपया विश्वास कीजिए कि मै यहाँ समझौते के लिए ही आया हूँ। महासभा की ओर से पेश किये हुए अपने दावे मे, जिसको मै यहा दुहराना नही चाहता, मै कोई कमी नही करता, न सब-विधायक समिति मे मुझे जो भाषण देने पडे उनका एक भी शब्द ही वापस लेता हूँ, फिर भी मै कहता हूँ कि ब्रिटिश कल्पनाशक्ति से जो भी कोई योजना या विधान तैयार हो सके, अथवा श्री शास्त्री, सर तेजबहादुर सप्रू, श्री जयकर, श्री जिन्ना, सर मुहम्मद शफी तथा इन जैसे दूसरे बहुत से विधान-विशारदो की कल्पना-शक्ति से जो कोई योजना तैयार हो सके उस सबपर विचार करने के लिए ही मै यहाँ हूँ।

मै घबराऊगा नही। और जबतक जरूरत होगी मै यही बना रहूँगा, क्योंकि सविनय-अवज्ञा को मै फिर से जारी नही करना चाहता। दिल्ली मे जो अस्थायी सन्धि हुई थी उसे मै स्थायी सन्धि के रूप में परिवर्तित करना चाहता हूँ। लेकिन ईश्वर के लिए मुझे, ६२ बरस के इस बूढे आदमी को, इसके लिए थोड़ा अवसर तो दो। मेरे लिए और जिस सस्था का मै प्रतिनिधित्व करता हूँ उसके लिए अपने हृदय मे थोडा स्थान तो बनाओ। लेकिन उस सस्था पर आप विश्वास नही करते, हालाकि प्रत्यक्षतया मुझमें आप विश्वास करते हुए भले ही जान पडे। परन्तु एक क्षण के लिए भी आप मुझे उस सस्था से भिन्न न समझिए, जिसका कि मै तो समुद्र मे एक बिन्दु के समान हूं। मै उस सस्था से हरगिज बडा नही हूँ, जिससे कि मै सम्बन्धित हू। मै तो उस सस्था से कही छोटा हूँ—और, यदि आप मेरे लिए स्थान रखते हो, अगर मुझपर आप विश्वास करते हों तो मै आपको आमन्त्रित करता हूं कि आप महासभा पर भी विश्वास कीजिए, अन्यथा मुझपर आपका जो विश्वास है वह किसी काम का नही। क्योकि मेरे पास अपना कोई अधिकार नही है,

सिवा उसके कि जो महासभा से मुझे मिला है। यदि आप महासभा की प्रतिष्ठा के अनुसार काम करेंगे तो आतंकवाद को आप नमस्कार कर लेंगे; तब, आतंकवाद का दबाने के लिए, आपका आतकवाद को जरूरत नही पड़ेगी। आज तो आपको अपने अनुशासनयुक्त और सगठित आतंकवाद द्वारा वहाँ पर मौजूद आतंकवादियो से लड़ना है, क्योकि वास्तविकता से अथवा दैववाणी से आप अन्धों की तरह विमुख ही रहेंगे। क्या आप उस वाणी को न सुनेंगे, जो इन आतकवादियों या क्रांतिकारियो के रक्त से लिखी जा रही है ? क्या आप यह नही देखेंगे कि हम जो रोटी चाहते हैं वह गेहू की बनी नही बल्कि स्वतन्त्रता की रोटी चाहते हैं, और जबतक वह रोटी मिल नही जाती, वह आजादी मिल नही जाती, ऐसे हजारों लोग आज मौजूद हैं, जो इस बात के लिए प्रतिज्ञाबद्ध हैं कि उस वक्त तक न तो खुद शान्ति लेगे और न देश को ही शाति से रहने देंगे ?

मै प्रार्थना करता हूँ कि आप उस दैववाणी को सुने। मैं कहता हूं कि जो राष्ट्र पहले ही अपने सन्तोष के लिए कहावत तक में मशहूर है उसके सन्तोष की आप परीक्षा न करें। हिन्दुओ की विनम्रता तो प्रसिद्ध ही है ; पर मुसलमान भी हिन्दुओं के अच्छे या बुरे सम्बन्ध से बहुत-कुछ विनम्र बन गये हैं। और, हां, मुसलमानो का यह हवाला सहसा मुझे अल्पसख्यको की उस समस्या का स्मरण करा देता है, जो कि एक पेचीदा समस्या है। विश्वास कीजिए कि वह समस्या हमारे यहाँ मौजूद है और हिन्दुस्तान में जो बात मैं अक्सर कहा करता था उसे मै भूल नहीं गया हूं—उन शब्दों को यहा फिर से दुहराता हूं—कि अल्पसंख्यकों की समस्या का जबतक हल नहीं हो जाता तबतक हिन्दुस्तान के लिए स्वराज्य नही हैं—हिन्दुस्तान के लिए आजादी नहीं है। मैं जानता हूं कि मैं इस बात को महसूस करता हूं, फिर भी जो मैं यहाँ आया हूं वह सिर्फ़ इसी आशा से कि शायद अकस्मात् यहां मैं इसका कोई उपाय निकाल सकूं, आज भी इस बात से मै बिलकुल नाउम्मीद नहीं हो गया हूं कि एक-न-एक दिन अल्पसंख्यकों की समस्या का कोई-न-कोई वास्तविक और

स्थायी हल मिल ही जायगा। जैसा कि मैंने अन्यत्र कहा है, उसीको मैं फिर से दुहराता हूं कि जबतक विदेशी शासन-रूपी तलवार एक जाति को दूसरी जाति से और एक श्रेणी को दूसरी श्रेणी से विभक्त करती रहेगी तबतक कोई भी वास्तविक स्थायी हल नही होगा; न इन जातियों के बीच स्थायी मैत्री ही होगी।

यदि कोई हल हुआ भी तो आखिर में और बहुत-से-बहुत, वह कागजी ही होगा। लेकिन जैसे ही आप उस तलवार को हटा लें कि वैसे ही घरेलू बन्धन, घरेलू प्यार-मुहब्बत, सयुक्त उत्पत्ति का ज्ञान, क्या आप समझते हैं कि इन सबका कोई असर न पड़ेगा ?

क्या ब्रिटिश शासन से पहले, जबकि यहाँ किसी अंग्रेज़ की शक्ल तक दिखलाई नही पड़ती थी, हिन्दू और मुसलमान तथा सिक्ख हमेशा एक-दूसरे से लड़ते ही रहते थे ? हिन्दू और मुसलमान इतिहासकारों के लिखे उस वक़्त के जो गद्य-पद्य-वर्णन हमारे यहाँ मौजूद हैं, उनसे तो इसके विपरीत यही प्रकट होता है कि आज की अपेक्षा उस ममय हम कहीं शान्ति से रह रहे थे और आज भी गाँवों में हिन्दू-मुसलमान कहाँ लड रहे हैं ? उन दिनों तो वे एक-दूसरे से बिलकुल लड़ते ही नही थे। मौ० मुहम्मद अली, जो स्वयं थोड़े-बहुत इतिहासज्ञ थे, अक्सर यह बात कहा करते थे। मुझसे उन्होंने कहा था—अगर परमेश्वर, उनके शब्दों में कहें तो—'अल्लाह', मुझे ज़िन्दगी दे, तो मेरा इरादा है कि मैं भारत के मुसलमानी शासन का इतिहास लिखूं। उस वक़्त उन्हीं काग़ज़-पत्रों से, जिन्हें कि अंग्रेज़ों ने सुरक्षित रख रक्खा है, मैं दिखलाऊँगा कि औरंगज़ेब वैसा दुष्ट नहीं था जैसा कि अंग्रेज़ इतिहासकारों ने उसे चित्रित किया है; और न मुगल शासन ही वैसा ख़राब था जैसा कि अंग्रेजी इतिहास में हमें बतलाया गया है; इत्यादि-इत्यादि। और यही बात हिन्दू-इतिहासकारों ने लिखी है। दरअसल यह झगड़ा बहुत पुराना नहीं है, बल्कि इस तीव्र लज्जा (पराधीनता) का ही समवयस्क है। मैं तो यह कहने का साहस करता हूं कि अंग्रेजों के आगमन के साथ ही इसका जन्म हुआ है और

जैसे ही यह सम्बन्ध—ग्रेट ब्रिटेन और भारतवर्ष के बीच का यह दुर्भाग्य-पूर्ण, कृत्रिम एव अस्वाभाविक सम्बन्ध—स्वाभाविक सम्बन्ध के रूप मे परिवर्तित हो जायगा, जबकि—यदि ऐसा हो सके कि—यह स्वैच्छिक या भागीदारी का सम्बन्ध हो जायगा कि जिसमे किसी भी पक्ष की इच्छा होने पर उसे छोडा या तोडा जा सके, तो आप देखेंगे कि हिन्दू, मुसल-मान, सिक्ख, अग्रेज, अधगोरे, ईसाई, अछूत सब कैसे एक आदमी की तरह आपस मे मिल-जुल कर रह सकते है।

नरेशो के बारे मे आज मै अधिक नही कहना चाहता; मगर मै उनके और महासभा के साथ अन्याय करूंगा यदि गोलमेज-परिषद्-सम्बन्धी तो नही किन्तु नरेशो के साथ के अपने दावे को पेश न करू ! सघ-शासन मे शामिल होने के लिए वे अपनी जो शर्ते पेश करे, उसकी उन्हे छूट है। परन्तु मैंने उनसे प्रार्थना की है कि वे भारत के अन्य भागों में रहने वालों के लिए भी मार्ग सुगम करदे, इसलिए सिर्फ उनके कृपापूर्ण और गम्भीर विचार के लिए मै कुछ सूचनाए भर कर सकता हू। मै समझता हू कि यदि वे समस्त भारत की सयुक्त सम्पत्ति के रूप में कुछ मौलिक अधिकारो को, फिर वे कुछ भी क्यों न हो, स्वीकार करले और उस स्थिति को स्वीकार कर न्यायालय द्वारा—और वह न्यायालय भी तो उन्हीं के द्वारा बना हुआ होगा—उनकी जांच होने दे और अपने प्रजा-जनों की ओर से प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त को—केवल सिद्धान्त को ही—वे प्रारम्भ कर दे, तो मै समझता हूं कि वे अपने प्रजाजनो को मिलाने, उनका सहयोग प्राप्त करने की दिशा मे एक लम्बा रास्ता तय कर लेंगे। यह दिखलाने के लिए कि उनके अन्दर भी प्रजातन्त्रीय भावना प्रज्वलित है, और वे शुद्ध स्वेच्छाचारी बने रहना नही चाहते वरन् ग्रेट ब्रिटेन के राजा जार्ज की तरह अपने प्रजाजनों के वैध शासक बनना चाहते हैं। इस प्रकार वे अवश्य ही लम्बा कदम रखेगे।

भारतवर्ष जिसका हक़दार है और जिसे वस्तुतः वह ले सकता है, वह उसे लेना चाहिए। परन्तु उसे जो कुछ भी मिले और जब भी मिले,

सीमा-प्रान्त को तो पूर्ण स्वाधिकार (Autonomy) आज ही मिल जाने दीजिए। उस हालत मे सीमा-प्रान्त सारे भारतवर्ष के लिए एक समुपस्थित प्रदर्शन होगा। अतएव सीमा-प्रान्त को कल ही प्रान्तीय स्वराज्य मिल जाय, महासभा का सारा मत इसी पक्ष मे मिलेगा। प्रधानमन्त्री महोदय, यदि मन्त्रि-मण्डल से यह प्रस्ताव स्वीकृत करा लेना सम्भव हो कि कल से ही सीमा-प्रान्त पूर्णतया स्वाधिकार-भोगी (Autonomous) प्रान्त बन जाय तो मै सरहदी कौमो के बीच अपना उपयुक्त स्थान ले लूगा और जब सरहद के उस पार वाले लोग भारत पर कोई बुरी नज़र डालेगे तो उन्हे अपना मददगार बना लूगा।

सबके अन्त मे, मै कहूगा कि अन्त का विषय मेरे लिए बड़ा आनन्ददायी है। आपके साथ बैठकर समझौते की बातचीत करने का शायद यही आखिरी मौका है। यह बात नही कि मै ऐसा चाहता हू। मै तो आपकी एकान्त-मत्रणाओं मे भी आपके साथ इसी मेज़ पर बैठना और आपके साथ चर्चा तथा अपना पक्ष पेश करना चाहता हू और आखिरी कुदकी या डुबकी लगाने से पहले घुटने तक टेक देने को तैयार हूं। लेकिन मेरा ऐसा सौभाग्य है या नही कि मै आपके साथ ऐसा सहयोग जारी रखू, यह बात मेरे ऊपर निर्भर नही है। सभव है कि यह आपपर भी निर्भर न हो। यह तो इतनी सारी परिस्थितियो पर निर्भर है कि जिनपर शायद न तो आपका और न हमारा ही किसी प्रकार का कोई नियन्त्रण होगा। अतः श्रीमान् सम्राट् से लेकर जहा मैने अपना निवास-स्थान बनाया उस ईस्ट-एण्ड के दरिद्रतम लोगो तक को धन्यवाद देने की आनन्दमयी रस्म तो मुझे अदा कर ही लेने दीजिए। लन्दन के उस मुहल्ले मे, जिसमें ईस्ट-एण्ड के गरीब लोग रहते हैं, मै भी उन्हीमे का एक बन गया हूं। उन्होने मुझे अपना ही एक सदस्य और अपने कुटुम्ब का एक अनुग्रहीत सभ्य मान लिया है। यहा से मै अपने साथ जो-कुछ ले जाऊंगा उसमें यह एक सबसे अधिक क़ीमती खज़ाना होगा। यहा भी मेरे साथ सभ्य व्यवहार ही हुआ है और जिनके भी सम्पर्क मे मै आया,

उनका शुद्ध स्नेह ही मुझे प्राप्त हुआ है। इतने सारे अंग्रेजों के सम्पर्क में मैं आया हूं यह मेरे लिए एक अमूल्य सुविधा हुई है। उन्होंने वे सब बातें सुनी हैं कि जो अवश्य ही अक्सर उन्हें बुरी लगती होंगी, हालांकि वे हैं सब सच। इन बातों को अक्सर मुझे उनसे कहना पड़ा है, मगर उन्होंने कभी ज़रा अधीरता या झुंझलाहट प्रकट नहीं की। मेरे लिए यह सम्भव नहीं कि इन बातों को भूल जाऊं। मुझपर कैसी भी क्यों न बीते, गोलमेज़-परिषद् का भविष्य कैसा भी क्यों न हो, एक बात ज़रूर मैं अपने साथ ले जाऊंगा, वह यह कि बड़े से लेकर छोटे तक हर एक से मुझे पूरी-पूरी कृपा और पूर्ण प्रेम ही प्राप्त हुआ है। मैं सोचता हूं कि इस मानुषी-प्रेम को पाने के लिए, मेरा यह इंग्लैण्ड-आगमन अवश्य ही बहुमूल्य रहा है।

अंग्रेज़ स्त्री-पुरुषों को हिन्दुस्तान के बारे में अक्सर ग़लत ख़बर मिलती रही हैं कि जिससे मैं आपके अख़बारों को गन्दा देखता हूँ, और लंकाशायर में तो वहां वालों को मुझसे चिढने का कुछ कारण भी था, फिर भी और-तो-और पर वहां के श्रमिकों में भी मुझे कोई चिढ़ या क्रोध नहीं मिला। इस बात ने मनुष्य-स्वभाव में जो अखण्ड विश्वास है उसे और भी बढ़ा दिया है, गहरा कर दिया है। श्रमिक स्त्री-पुरुषों ने मुझे गले लगाया और मेरे साथ ऐसा व्यवहार किया, मानो मैं भी उन्हींमें का होऊं। मैं इसे कभी न भूलूंगा।

फिर मैं अपने साथ हजारों अंग्रेजों की मित्रताएं भी तो ले जा रहा हूँ। मैं उन्हें जानता नहीं, किन्तु बड़े सवेरे जब मैं आपकी गलियों में घूमने निकलता हूं तब उनकी आंखों में उस स्नेह के दर्शन करता हूं। मेरे दुःखी देश पर चाहे कैसी ही क्यों न बीते, यह सब आतिथ्य, यह सब कृपालुता कभी भी मेरी स्मृति से दूर नहीं हो सकती, अन्त में एक बार फिर मैं आपकी सहिष्णुता के लिए आपको धन्यवाद देता हूँ।

: १२ :

अलविदा !

प्रधानमन्त्री महोदय और मित्रो, सभापति के धन्यवाद का प्रस्ताव पेश करने का सौभाग्य और उत्तरदायित्व मुझपर आया है और इस सौभाग्य और उत्तरदायित्व को स्वीकार करते हुए मुझे बड़ा आनन्द होता है। जो सभापति सज्जनता और विवेक के साथ सभा का कार्य संचालन करता है वह तो हमेशा धन्यवाद का पात्र होता ही है, फिर चाहे सभा के सदस्य सभा में हुए निर्णयों अथवा स्वयं सभापति द्वारा प्रदत्त निर्णय से सहमत हों अथवा न हों।

प्रधानमन्त्री महोदय, मैं यह जानता हूँ कि आपपर दोहरा कर्त्तव्य-भार था। आपको परिषद् का काम-काज तो पर्याप्त शोभा और निष्पक्षता के साथ करना ही था; किन्तु साथ ही अक्सर आपको सरकारी निर्णयों पर भी यहां पहुंचना पड़ता था।

और सभापति-पद से आपका अन्तिम कार्य इस परिषद् मे छिड़े हुए विषयों पर सरकार का विचारपूर्वक किया हुआ निर्णय ज़ाहिर करना था। आपके कार्य के इस अंग पर मैं इस समय कुछ नहीं कहना चाहता; किन्तु मेरे लिए विशेष आनन्ददायी भाग तो आपने जिस तरह कार्य-संचालन किया वह है और आपने अनेक बार समय का ध्यान करा कर जो शिक्षा दी है उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। सभापति लोग बहुत बार इस अत्यावश्यक कर्त्तव्य को भुला देते हैं और मुझे स्वीकार करना चाहिए कि मेरे देश में तो वे जिस तरह नियमित रूप से इस कर्त्तव्य को भुला देते हैं, उसे देखकर जी उकता जाता है। हम लोगों मे समय का पर्याप्त ध्यान है, ऐसा नही कहा जा सकता। प्रधानमन्त्री महोदय, मैं जब वापस हिन्दुस्तान जाऊंगा, तब विलायत

के प्रधानमन्त्री ने समय की पाबन्दी-मम्बन्धी जो शिक्षा दी है, बडी खुशी के साथ उसे मै अपने देश-बन्धुओ को समझाने की कोशिश करूगा।

दूसरी जो चीज आपने हमे बताई है, वह आपका आश्चर्यजनक परिश्रम है। स्कॉटलैण्ड की कठोर आबोहवा मे पले हुए होने के कारण आप यह नही जानते कि आराम कैसा होता है और न हमे भी यह जानने दिया जाता है कि आराम कैसा होता है। करीब-करीब बेजोड अविश्रान्तता के साथ आपने हममे—मेरे मित्र और पूज्य भाई वयोवृद्ध प० मदनमोहन मालवीयजी एव मेरे-जैसे बूढे आदमी से—भी काम लिया है।

आप जैसे स्काच को शोभा देने वाली निर्दयता के साथ आपने मेरे मित्र और माननीय नेता शास्त्रीजी को काम कर-कर के लगभग थका ही दिया है। आपने कल हमसे कहा भी था कि आप उनके शरीर की हालत जानते थे, फिर भी कर्त्तव्य की प्रेरणा के सामने समस्त वैयक्तिक बातो को आपने एक ओर रख दिया। इसके लिए आप सम्मान के पात्र है और आपके इस आश्चर्य-कारक परिश्रम को मै सदैव स्मरण रखूगा।

लेकिन इस सम्बन्ध में मै कहना चाहता हूं कि यद्यपि मै शैथिल्य पैदा करनेवाली जल-वायु का जीव समझा जाता हूँ, फिर भी कदाचित् परिश्रम मे हम आपके साथ मुकाबला कर सकेंगे। किन्तु इसकी कोई बात नही। जैसा कि आपका हाउस ऑफ़ कामन्स कभी-कभी करता है, कल पूरे चौबीस घण्टे काम करके जो आपने इस बात का नमूना बताया हो कि बाज-बाज मौके पर आप कैसे अविश्रान्त काम कर सकते हैं तो आप जरूर बाज़ी मार ले जायगे।

अतएव धन्यवाद का प्रस्ताव पेश करते हुए मै बडा खुश हूँ। किन्तु मुझे जो उत्तरदायित्व दिया गया है, उसका पालन करने और उसमे अपना सौभाग्य मानने का एक और भी कारण है, और वह शायद बड़ा कारण है। कुछ संभव है—कुछ सम्भव है यही मै कहूँगा, क्योंकि

आपकी घोषणा का मैं एक बार, दो बार, तीन बार, जितनी बार आवश्यकता होगी, उतनी बार अध्ययन करूंगा, उसके एक-एक शब्द का अर्थ समझूंगा, उसमे गूढता होगी तो उसे भी खोजूंगा । उसके अन्तर्गत जो-कुछ छिपा होगा उसे समझ लूंगा और तभी यदि आना हुआ तो मैं इस निर्णय पर आऊंगा, जैसी कि अभी सम्भावना दिखाई पड़ती है कि मुझे तो अब अपने जुदे रास्ते ही जाना होगा ।

हमारे रास्ते जुदी-जुदी दिशाओ मे जाते है, तथापि हमे उसकी कोई चिन्ता नही हैं । आप तो मेरे हार्दिक और आन्तरिक धन्यवाद के पात्र हैं । हमारे इस मनुष्य समाज मे एक-दूसरे के प्रति आदर-भाव रखने के लिए हमे एक-दूसरे के साथ सहमत होना ही चाहिए, ऐसी बात नही है । अपना कोई सिद्धात ही न रहे, इस हद तक एक-दूसरे के विचारों के लिए सूक्ष्म आदर या नम्रता नही रक्खी जा सकती । इसके विपरीत मनुष्य-स्वभाव का गौरव तो इसमे है कि हम जीवन की हलचलो से टक्कर लें । कई बार सगे भाइयों तक को अपने-अपने रास्ते जाना पडता है; किन्तु यदि कलह के अन्त मे—मतभेदो के अन्त मे—वे यह कह सके कि उनके मनों मे द्वेष न था और सज्जन और सैनिक की तरह उन्होने एक-दूसरे के साथ व्यवहार किया, तो कोई चिन्ता की बात नही । यदि इस प्रकरण के अन्त मे मै अपने एवं अपने देश-बन्धुओं के विषय में यह कह सकू और प्रधानमन्त्री आपके तथा अपके देश-बन्धुओं के विषय मे कह सके, तो मै कहूंगा कि हम अच्छी तरह विदा हुए हैं । मे नही जानता कि मेरा रास्ता किस दिशा में होगा, किन्तु मुझे इस बात की कोई चिन्ता नहीं है। अतः मुझे आपसे बिलकुल विपरीत दिशा से जाना पडे तो भी आप तो मेरे आन्तरिक धन्यवाद के अधिकारी है ।

परिशिष्ट (१)

दिल्ली का समझौता—५ मार्च सन् १९३१ ईसवी

[वाइसराय और गांधीजी के बीच हुई बातचीत के परिणामस्वरूप हुए जिस समझौते के कारण महासभा ने सविनय आज्ञाभंग के आन्दोलन को स्थगित कर दूसरी गोलमेज परिषद में भाग लेना स्वीकार किया था, उसके कुछ आवश्यक अंश नीचे उद्धृत किये जाते हैं ।]

धारा २—विधान-सम्बन्धी प्रश्नों के विषय में भविष्य में होनेवाली बातचीत का विस्तार-क्षेत्र, सम्राट सरकार की अनुमति द्वारा, आगे बातचीत करने के लिए गोलमेज़ सभा द्वारा प्रस्तावित भारत के लिए वैध-शासन की योजना ही है । उस प्रस्तावित योजना का संघ-शासन एक मुख्य अंग है—इसी प्रकार कुछ संरक्षण, जो भारत के हित में होंगे, जैसे रक्षा, परराष्ट्र-सम्बन्धी प्रश्न, अल्पसंख्यक जातियों का स्थान, भारत की साख और आर्थिक ज़िम्मेदारियां, ये उसी योजना के प्रमुख अंग हैं ।

धारा ६—विदेशी माल के बहिष्कार से दो बातें पैदा होती हैं—पहली बहिष्कार का रूप और दूसरी बहिष्कार करने के तरीक़े । इस विषय में सरकार की नीति यह है—भारत की माली हालत को तरक़्क़ी देने के लिए आर्थिक और व्यावसायिक उन्नति के हितार्थ चालू की हुई योजना के अंग-रूप भारतीय कलाकौशल को प्रोत्साहन देने में सरकार की सहमति है और उसकी यह इच्छा नहीं है कि इस विषय में किये हुए प्रचार, शान्ति से समझाना और विज्ञापन आदि का, जो किसीकी वैयक्तिक स्वतन्त्रता में बाधा न उपस्थित करें और जो क़ानून और शांति की रक्षा के प्रतिकूल न हों, विरोध करे । विदेशी माल का बहिष्कार (सिवाय कपड़े के, जिसमें सब विदेशी कपड़े शामिल हैं) सविनय आज्ञाभंग आन्दोलम के दिनों में, केवल नहीं तो विशेषकर,

अंग्रेजी माल के विरुद्ध ही लागू किया गया है और वह भी, जैसा कि स्वीकार भी किया गया है, राजनैतिक ध्येय-प्राप्ति के हितार्थ दबाव डालने के लिए।

अत. यह स्वीकार किया जाता है कि ब्रिटिश भारत, देशी राज्य, सम्राट् की सरकार और इंग्लैंड के विभिन्न राजनैतिक दलों के प्रतिनिधियों के बीच होनेवाली स्पष्ट और मित्रतापूर्ण बातचीत मे महासभा के प्रतिनिधियो की शिरकत के, जो इस समझौते का प्रयोजन है, उपरोक्त रूप मे और उपरोक्त कारणों से किया हुआ बहिष्कार विपरीत होगा।

इसलिए यह तय हुआ कि सविनय आज्ञाभग आंदोलन के स्थगित होने मे ब्रिटिश माल के बहिष्कार को राजनैतिक शस्त्र के तौर पर काम मे न लाना भी शामिल है। इसलिए आन्दोलन के समय में जिन-जिन ने ब्रिटिश माल की खरीद-फरोख्त बन्द करदी थी, यदि वे अपना निश्चय बदलना चाहे तो उनको अबाध्यरूप मे ऐसा करने दिया जाय।

धारा ७—विदेशी माल के स्थान पर भारतीय माल व्यवहार कराने और मादक द्रव्यो के व्यवहार को कम करने के लिए जो उपाय काम मे लाये जाते है, उनके विषय मे यह तय किया जाता है कि ऐसे उपाय, जो कानून-सम्मत पिकेटिंग के विपरीत हैं, व्यवहार मे नही लाये जायगे। ऐसी पिकेटिंग शान्तिमय होनी चाहिए और उसमे जबरदस्ती धमकी, विरुद्ध भडकाहट, प्रजा के कार्य मे बाधा और किसी क़ानूनी जुर्म से उसका कोई सम्बन्ध नही होना चाहिए। यदि कही उपरोक्त उपायो से काम लिया गया तो वहा का पिकेटिंग स्थगित कर दिया जायगा।

परिशिष्ट (२)

प्रधानमन्त्री की घोषणा

अ

[प्रथम गोलमेज-परिषद् के समाप्त होने पर ता० १९ जनवरी सन् १९३१ को प्रधानमन्त्री ने जो घोषणा की, वह नीचे दी जाती है ।]

सम्राट की सरकार का विचार है कि भारत के शासन का भार केन्द्रीय और प्रान्तीय धारासभाओं पर हो, केवल सक्रमण काल के लिए सरकार उत्तरदायित्व पूरा करने के लिए, विशेप परिस्थितिवश और अल्पसख्यक जातियों की राजनैतिक स्वतन्त्रता और अधिकारो को कायम रखने के लिए कुछ सरक्षणों का पालन करना आवश्यक समझती है ।

इस संक्रमण काल की विशेष परिस्थिति के हितार्थ जो सरक्षण शासन-विधान में होगे उनके निर्माण में सम्राट् की सरकार का मुख्य ध्यान इस बात पर रहेगा कि वे सरक्षण ऐसे हो और उनका पालन भी इस प्रकार किया जाय कि जिससे नये विधान द्वारा भारत मे पूर्ण उत्तर-दायित्वपूर्ण शासन स्थापित होने मे कोई बाधा उत्पन्न न हो ।

यह घोपणा करते हुए सम्राट की सरकार को यह बात ज्ञात है कि कुछ बातें, जो प्रस्तावित शासन-विधान के लिए अत्यावश्यक हैं, अभी पूर्णतया तय नही हुई है। परन्तु सरकार को यह विश्वास है कि इस सभा मे जो कार्य हुआ है, उससे यह आशा होती है कि इस घोषणा के बाद जो बातचीत होगी, उसमे वे सब आवश्यक बाते तय हो जायंगी ।

सम्राट की सरकार ने यह बात जान ली है कि इस सभा की कार्यवाही, जिसमे सब दलो की सम्मति है इसी आधार पर हुई है कि

भावी केन्द्रीय सरकार अखिल भारतीय संघ-शासन-पद्धति के अनुसार होगी, जिसमें ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों की सहमति द्विखंड धारासभा द्वारा होगी। उस शासन-विधान की रचना और स्वरूप तो भविष्य में ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधियों और देशी राजाओं के बीच बात होकर ही निश्चय होगे। इस शासन का अधिकार-क्षेत्र भी बाद में विचार कर ही तय होगा ; क्योंकि संघ-शासन के अधीन देशी-राज्यों से सम्बन्ध रखनेवाले वे ही प्रश्न होंगे, जो देशी राजा स्वयं संघ में शामिल होने पर अपनी खुशी से संघ-शासन के अधीन कर देंगे। देशी राजाओं का सघ में शामिल होना केवल इसी शर्त पर होगा कि राजाओं द्वारा संघ को अर्पित अधिकारों के अतिरिक्त अन्य सब विषयों में उनका सम्बन्ध सम्राट् के प्रतिनिधि वाइसराय के द्वारा सीधा सम्राट् के साथ रहेगा। कार्यकारिणी (Executive) को धारासभा के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए, इस नियम के अनुमार भावी सरकार संघ-शासन की धारासभा के अधीन रहेगा।

मौजूदा परिस्थिति में रक्षा और परराष्ट्रों से सम्बन्ध के विषय गवर्नर जनरल के अधीन रहेगे और उसको इस विषय में शासन करने के लिए उपयुक्त अधिकार देने का भी प्रबन्ध किया जायगा। इसके अतिरिक्त चूंकि असाधारण आवश्यकता आ पडने पर राज्य की शांति का भार वस्तुत: गवर्नर जनरल पर है और वही अल्पसख्यक जातियो के क़ानूनी स्वत्त्वों की रक्षा के लिए ज़िम्मेदार है, इसलिए गवर्नर जनरल को इन विषयों के शासन के लिए भी उपयुक्त अधिकार रहेंगे।

अब रहा आर्थिक अधिकारों का प्रश्न, सो आर्थिक अधिकार देने के पहले इस बात की आवश्यकता है कि भारतमन्त्री द्वारा स्वीकृत आर्थिक ज़िम्मेदारियों के समुचित पालन का प्रबन्ध हो और भारत की आर्थिक अवस्था और साख अक्षुण्ण बनी रहे। संघ-विधायक समिति की रिपोर्ट की इस सम्बन्ध में जो सिफ़ारिशें हैं : जैसे रिज़र्व बैंक की

स्थापना ऋण-प्राप्ति का साधन और विनिमय-नीति, इन सबका सम्राट् की सरकार की समिति में, नये शासन-विधान में समावेश होना है। भारत की आर्थिक व्यवस्था में संसार का विश्वास अक्षुण्ण रहे, इसके लिए इन सब बातों का विधान में समावेश परमावश्यक है। इनके अतिरिक्त अन्य सब आर्थिक विषयों जैसे आय के सीगे और हस्तांतरित विषयों में व्यय के नियंत्रण में, भावी भारत सरकार को पूर्ण स्वतन्त्रता रहेगी।

इसका अर्थ यह है कि केन्द्रीय धारासभा और कार्यकारिणी (Executive) में द्वैध शासन के चिह्न भावी विधान में विद्यमान रहेंगे।

परिस्थिति-विशेष के कारण रक्षित अधिकारों का जारी रहना अभी तो विधान में आवश्यक प्रतीत होता है और वास्तव मे स्वतन्त्र-से-स्वतन्त्र विधान में भी किसी-न-किसी प्रकार के रक्षित अधिकार रहते ही हैं। हां, ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि रक्षित अधिकारों का प्रयोग कम-से-कम किया जाने का अवसर उपस्थित हो। उदाहरणार्थ मंत्रियों का गवर्नर जनरल से यह आशा करना कि वह अपने रक्षित अधिकारों का प्रयोग कर, उनकी अपनी जिम्मेवारी के भार को हल्का करे, अनुचित होगा ; क्योंकि ये रक्षित अधिकार तो विशेष अवस्था में ही उपयोग मे आने चाहिए, नही तो उत्तरदायित्वपूर्ण शासन ही वृथा हो जायगा। यह बात स्पष्टतया समझ लेनी चाहिए।

गवर्नर के प्रान्तों में अक्षुण्ण उत्तरदायित्वपूर्ण शासन की व्यवस्था की जायगी। प्रान्तीय मन्त्री धारासभा के सदस्यों में से होंगे और वे सम्मिलित रूप मे धारासभा के प्रति उत्तरदायी होंगे। प्रान्तीय शासन का अधिकार-क्षेत्र इतना विशाल होगा कि प्रान्त के शासन में अधिक-से-अधिक स्वराज्य का उपयोग हो सकेगा। संघ-शासन के अधीन वही विषय होंगे, जो अखिल भारतीय हैं और जिनके शासन की जिम्मेवारी विधान द्वारा संघ-सरकार को दी हुई है।

गवर्नर को केवल वही न्यूनातिन्यून अधिकार होंगे, जिनसे असाधारण समय में शान्ति की रक्षा हो सके और विधान में प्रस्तावित सरकारी नौकरों और अल्पसंख्यक जातियों के अधिकार सुरक्षित रह सकें।

अन्त में सम्राट् की सरकार की धारणा है कि प्रान्तों में उत्तर दायित्वपूर्ण शासन की स्थापना करने के लिए यह आवश्यक है कि धारा सभाओं में सभासदों की वृद्धि हो और मतदाताओं की संख्या में भी उपयुक्त वृद्धि की जाय।

विधान-रचना में सम्राट् की सरकार का विचार है कि ऐसी शर्तें रक्खी जायं, जिनसे न केवल अल्पसंख्यक जातियों के राजनैतिक प्रतिनिधित्व की रक्षा का प्रबन्ध ही हो, बल्कि उनको यह भी विश्वास दिला दिया जाय कि धर्म, जाति तथा वर्ण आदि की विभिन्नता के कारण कोई नागरिकता के अधिकार से वंचित न रहेगा।

सम्राट्-सरकार की सम्मति में विभिन्न जातियों का यह कर्त्तव्य है कि अल्पसंख्यक उप-समितियों में उठाये हुए प्रश्नों पर, जो वहाँ तय नही हो सके हैं, आपस में समझौता करलें। आगे की बातचीत में यह समझौता हो जाना चाहिए। सरकार इस कार्य में भरसक सहायता देगी, क्योंकि उसकी इच्छा है कि नए विधान का संचालन न केवल अविलम्ब ही हो, बल्कि उसके सचालन में प्रारम्भ से ही सब जातियों का सहयोग और विश्वास भी होना चाहिए।

विभिन्न उप-समितियों ने, जो कि भारत के लिए उपयुक्त विधान के आवश्यक अंगों पर विचार कर रही हैं, विधान के ढांचे पर विस्तृत रूप से गवेषणा की है। अतः जो बातें अबतक तय नहीं हुई हैं, वे भी इस सीमा तक पहुंच गई हैं, जहाँ से समझौता दूर नहीं हैं। सम्राट् की सरकार इस सभा की रचना और अल्प समय, जो इसको कार्य के लिए लन्दन में मिला है, दोनों पर विचार करते हुए यही उचित समझती है कि अभी इसकी कार्रवाही स्थगित कर दी जाय और इसकी सफलता में जो कठिनाइयाँ उपस्थित हुई हैं, उनके दूर करने की विधि पर भी विचार

किया जाय। सम्राट् की सरकार शीघ्र ही एक योजना करने वाली है, जिससे हम सबका सहयोग जारी रहे और अपने श्रम के फलस्वरूप नया विधान शीघ्र ही तैयार हो जाय। यदि इस अवसर में सविनय आज्ञाभंग-आन्दोलन में भाग लेने वालों ने वायसराय की अपील के उत्तर में इस घोषणा के अनुसार कार्य में सहयोग देना स्वीकार किया तो उनके सहयोग प्राप्त करने का भी प्रयत्न किया जायगा।

अब मेरा कर्त्तव्य है कि आपने यहाँ आकर, प्रत्यक्ष बातचीत करके जो प्रशंसनीय सेवा भारतवर्ष की ही नहीं बल्कि इस देश की भी की है, उसके लिए मै सरकार की ओर से आप सबको बधाई दूं। इधर कई वर्षों से दोनो ओर के अनेक पुरुषों ने बीच में पड़कर हमारे और आपके पारस्परिक सम्बन्ध मे जो गलतफहमी और विभिन्नता पैदा करा दी है, उसको दूर करने का सबसे अच्छा उपाय इस प्रकार प्रत्यक्ष की बातचीत ही है। इस प्रकार मिलकर एक-दूसरे के विचार और बाधाओं से जानकार होना ही पारस्परिक विरोध दूर करने और एक-दूसरे की माँग पूरी करने का सर्वोत्तम उपाय है। सम्राट् की सरकार एकता प्राप्त करने का भरसक प्रयत्न करेगी, जिससे नया विधान पार्लामेंट से पास होकर दोनों देश के वासियों की सद्‌कामना के साथ संचालन में आवे।

आ

[दूसरी गोलमेज़-परिषद् की समाप्ति पर ता० १ दिसम्बर सन् १९३१ को प्रधानमन्त्री ने जो वक्तव्य दिया, वह नीचे दिया जाता है]

१—हम गोलमेज़-परिषद् के दो अधिवेशन कर चुके है और अब समय आगया है कि भारत के भावी विधान की रचना मे जो-जो कठिनाइयाँ उपस्थित हैं, उनपर विचार करने और उनको दूर करने का प्रयत्न करने के प्रश्नों पर हमने जो कुछ कार्य किया है, उसका लेखा लें। जो विभिन्न रिपोर्टें हमारे सामने पेश हुई है, वे हमारे सहयोग के कार्य को दूसरी मंज़िल पर पहुंचा देती है, और अब हमको ज़रा विश्राम लेकर

अबतक के कार्य का सिंहावलोकन करना चाहिए। यहाँ यह भी देखना चाहिए कि हमने अबतक किन-किन विरोधों का सामना कर लिया है और अपने कार्य को सफलतापूर्वक शीघ्रातिशीघ्र समाप्त करने के लिए क्या उद्योग किया जाय। अपनी पारस्परिक बातचीत और व्यक्तिगत सम्बन्धों को मैं बड़ा मूल्यवान समझता हूँ। आज मुझे यह कहने का साहस है कि इन्हीं दो बातों ने विधान के प्रश्न को केवल शुष्क विधान-रचना तक ही सीमित नहीं रहने दिया, बल्कि हमारे हृदयों में एक-दूसरे के लिए आदर और विश्वास के भाव पैदा कर दिये, जिससे हमारा कार्य एक आशापूर्ण राजनैतिक सहयोग के समान हो गया। मुझे दृढ़ विश्वास है कि यही भाव अन्त तक रहेंगे, क्योंकि केवल सहयोग से ही हमको सफलता प्राप्त हो सकती है।

२—इस वर्ष के प्रारम्भ में मैंने तत्कालीन सरकार की नीति की घोषणा की थी और मुझे मौजूदा सरकार की ओर से यही आदेश है कि मैं आपको और भारतवर्ष को निश्चयपूर्वक आश्वासन दिलाता हूँ कि इस सरकार की भी वही नीति है। मैं उस घोषणा के मुख्य-मुख्य भागों को पुनः घोषित करता हूं—

"सम्राट् की सरकार का विचार है कि भारत के शासन का भार केन्द्रीय और प्रान्तीय धारासभाओं पर हो, केवल सक्रमण-काल के लिए सरकार अपना उत्तरदायित्व पूरा करने के लिए परिस्थितिवश और अल्पसंख्यक जातियों की राजनैतिक स्वतन्त्रता और अधिकारों को क़ायम रखने के लिए कुछ संरक्षणों का पालन करना आवश्यक समझती है।"

"इस संक्रमण-काल विशेष परिस्थिति के हितार्थ जो संरक्षण शासन-विधान में होंगे, उनके निर्माण में सम्राट् की सरकार का मुख्य ध्यान इस बात पर रहेगा कि वे सरक्षण ऐसे हों और उनका पालन भी इस प्रकार किया जाय कि जिससे नये विधान द्वारा भारत में पूर्ण उत्तरदायित्वपूर्ण शासन स्थापित होने में कोई बाधा उत्पन्न न हो।"

३—केन्द्रीय सरकार के विषय में तो मैं कह चुका था कि सम्राट् की गत सरकार ने कुछ प्रकट शर्तों के साथ यह सिद्धान्त स्वीकार कर लिया था कि यदि भावी विधान अखिल भारतीय संघशासन-पद्धति के अनुसार हो तो कार्यकारिणी (Executive) धारासभा के प्रति उत्तरदायी होगी। शर्तें यही थीं कि फ़िलहाल रक्षा और परराष्ट्रों से सम्बन्ध के विषय गवर्नर जनरल द्वारा रक्षित रहें और आर्थिक अधिकारों के विषय में इस बात का ध्यान रक्खा जाय कि भारत मन्त्री कृत आर्थिक ज़िम्मेदारियों का समुचित रूप से पालन हो, जिससे भारत की आर्थिक अवस्था और साख अक्षुण्ण बनी रहे।

४—अन्त में हमारी यह सम्मति थी कि गवर्नर जनरल को ऐसे अधिकार दिये जायं, जिनसे वह अल्पसंख्यक जातियों के राजनैतिक अधिकार-रक्षण और असाधारण समय में देश में शान्ति-स्थापन की अपनी ज़िम्मेदारी पूरी कर सके।

५—मोटे तौर पर यही सब चिह्न भावी भारत के शासन-विधान के थे, जो सम्राट् सरकार ने गत गोलमेज़-परिषद् की समाप्ति पर विचार कर प्रकाशित किये थे।

६—जैसा कि मैंने अभी प्रकट किया है, सम्राट् की मौजूदा सरकार के मेरे सहयोगी गत जनवरी वाले मेरे वक्तव्य को, अपनी नीति के अनुकूल स्वीकार करते हैं। विशेषकर ये इस बात को पुनर्घोषित कर देना चाहते हैं कि 'अखिल भारतीय संघ' ही उनकी सम्मति में भारत की विधान-सम्बन्धी कठिनाइयों की कुंजी है। वे सब इसी नीति का अविचलित रूप से अवलम्बन कर यथाशक्ति विघ्न-बाधाओं को दूर करते हुए चलना चाहते हैं। इस घोषणा पर अधिकार की मोहर लगाने के लिए मैं आज के वक्तव्य को 'ह्वाइट पेपर' के तौर पर पार्लमेंट के दोनों भवनों में बंटवा दूंगा और सरकार इसी सप्ताह पार्लमेंट से उसे मंज़ूर करवा लेगी।

७—गत दो मास से जो बातचीत चल रही है, उसने हमारे प्रश्नों

को स्पष्ट कर दिया है, जिससे उनमें से कुछ को हल करना भी सहज हो गया है। परन्तु इससे यह भी सिद्ध हो गया है कि बाक़ी के प्रश्नों पर फिर सहयोगपूर्ण विचार करना आवश्यक है। अभी कई बातों में विचार-विभिन्नता है जैसे—संघ, धारासभा की रचना और अधिकारों के विषय । मुझे दुःख है कि अल्पसंख्यक जातियों के संरक्षण से मुख्य प्रश्न का कुछ फ़ैसला न होने से यह परिषद् संघ-सरकार और धारासभा के रूप और उनके पारस्परिक सम्बन्ध के विषय मे ठीक तय नही कर सकी। इसी प्रकार अबतक देशी राज्य भी संघ में अपना-अपना स्थान और उसमें अपने पारस्परिक सबन्ध के विषय मे कुछ तय नही कर सके हैं। इन बातों की उपेक्षा करने से हमारे ध्येय की प्राप्ति नही होगी और न यह सभव है कि ये सब कठिनाइयां अपने-आप दूर हो जायगी। अतः पूर्व इसके कि हम इन सब बातों का विधान के ढांचे मे सफलता से समावेश कर सके, आवश्यकता इस बात की है कि हम इनपर पुनर्विचार और बातचीत करें, जिससे भिन्न-भिन्न मतों और स्वार्थों का समन्वय हो सके। इससे मेरा यह तात्पर्य नही है कि यह कार्य असम्भव है या इसके लिए हमें अधिक ठहरना पड़ेगा। मै तो आपको यह याद दिलाना चाहता हूं कि हमने ऐसा काम हाथ में लिया है, जिसमें सम्राट् की सरकार और भारत के नेताओं को ध्यान, साहस और समय लगाना पड़ेगा, ताकि ऐसा न हो कि कार्य समाप्त होने पर कुछ अव्यवस्था और निराशा हो, और राजनैतिक उन्नति का द्वार खुलने के बजाय बंद हो जाय। हमें अच्छे कारीगर की तरह ठीक और सही तौर पर कार्य करना पड़ेगा और भारत हमसे इसी कर्त्तव्य की आशा भी करता है।

८—तो हमारी स्थिति अभी क्या है; हमने ध्येय की प्राप्ति के लिए कौन-सा मार्ग निश्चित किया है? मैं ऐसी साधारण घोषणाएं नही चाहता, जो हमको आगे बढ़ाने में सहायक न हों। जो घोषणाएं पहले की जा चुकी हैं और जिनको आज मैंने पुनः दोहराया है, सर-

कार की सद्‌भावना के परिचय और उन समितियों को, जिनका ज़िक्र मैं आगे करूंगा, कार्य-संलग्न करने के लिए पर्याप्त हैं। मैं तो व्यावहारिक होना चाहता हूं। अखिल भारतीय संघ-स्थापन का बृहद् विचार अभी लोगों के दिलों में जमा हुआ है। संक्रमणकाल के लिए कुछ उपयुक्त संरक्षणों सहित उत्तरदायित्वपूर्ण संघ-सरकार का सिद्धान्त अभीतक अविकल बना हुआ है। हम सब इसमें सहमत हैं कि भावी गवर्नर के प्रान्तों के शासन में बाहर से कम-से-कम हस्तक्षेप और भीतरी प्रबन्ध में अधिक-से-अधिक स्वतन्त्रता हो।

९—इस अन्तिम बात के विषय में मैं यह कह दूं कि भावी सुधार के फलस्वरूप सीमा-प्रान्त को गवर्नर का प्रान्त बनाने का हमारा विचार है। इसके अधिकार केवल सीमा-प्रान्त की विशेष परिस्थिति के कारण कुछ परिवर्तनों के अतिरिक्त अन्य प्रान्तों के समान ही होंगे और उनके समान ही शांति-स्थापन और रक्षा के निमित गवर्नर को दिये हुए अधिकार वास्तविक और कारगर होंगे।

१०—सम्राट् की सरकार गत गोलमेज़-परिषद् में पास हुई सिन्ध को अलग प्रान्त बनाने की सिफारिश सिद्धान्त-रूप में स्वीकार करती है बशर्ते कि इस प्रान्त को अपने आर्थिक भार उठाने के साधन प्राप्त हो जायं। अतः हमारा विचार भारत सरकार से यह कहने का है कि वह सिन्ध के प्रतिनिधियों के साथ यह विचार करने के लिए एक कान्फ़रेंस की आयोजना करे कि अर्थ-विशेषज्ञों द्वारा इस विषय में बतलाई हुई कठिनाइयों को दूर करने का यत्न कैसे किया जाय।

११—मैं विषयान्तर में चला गया—हमारा विषय स्वतन्त्र प्रान्त और देशी राज्यों का सम्मिलित संघ था। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं, हमारी बातचीत ने स्पष्ट सिद्ध कर दिया है कि संघ की स्थापना एकाध महीने में नहीं हो सकती है। अभी तो बहुत कुछ रचनात्मक कार्य बाक़ी हैं, कई बातों पर समझौता कर उनके आधार पर भवन-निर्माण करना है। यह तो स्पष्ट है कि प्रान्तों में उत्तरदायित्वपूर्ण शासन स्थापित

करना उतना कठिन नहीं है और यह सुगमतर रीति से भी हो सकता है। अभी केन्द्रीय सरकार के पास जो अधिकार हैं, उनमें घटा-बढी करने में—क्योंकि प्रान्तीय स्वराज्य के लिए प्रांतों को विशेष स्वतन्त्रता से अधिकार देने पड़ेंगे—कोई खास बाधाएं उपस्थित नही होंगी। इसी कारण सरकार को दबाकर कहा गया है कि संघ-स्थापन करने का सुगमतर उपाय यही है कि प्रान्तों को शीघ्र स्वराज्य दे दिया जाय और इसमें यथासंभव आवश्यकता के सिवा एक दिन की भी देर न हो। परन्तु ऐसा मालूम होता है कि यह इकतरफ़ा सुधार आपको कम रुचिकर प्रतीत होता है। आप लोगों की इच्छा है कि विधान मे ऐसा कोई परिवर्तन न किया जाय, जिसका असर समष्टि रूप से सारे भारत पर न पड़े और सम्राट् की सरकार की भी यह मंशा नहीं है कि कोई भी उत्तरदायित्व, जो किसी भी कारण से असामयिक समझा जाता हो, बलात् दिया जाय। संभव है कि समय और परिस्थिति मे परिवर्तन हो जाय, अतः अभी शीघ्र ही ऐसा कार्य नही करना चाहिए जिससे आगे पछताना पड़े। हमारी सदा से यह सम्मति रही है और अब भी है कि सघ-शासन स्थापित करने के प्रयत्न मे शीघ्रता की जाय। परन्तु इस कारण से सीमाप्रान्त के सुधारों में विलम्ब करना भूल होगी, अतः हमारा विचार है कि भावी सुधारों के लिए न ठहर कर, मौजूदा विधान के अनुसार ही अभी सीमाप्रान्त को जल्दी-से-जल्दी गवर्नर का प्रान्त बना दिया जाय।

१२—हमको यह अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि केन्द्रीय अथवा प्रान्तीय प्रगति के मार्ग में जातिगत प्रश्नरूपी बहुत बड़ी रुकावट पड़ी हुई है। मैंने अपनी इस धारणा को आपसे कभी नही छिपाया है कि इसका फैसला तो सबसे पहले आपको आपस मे ही कर लेना चाहिए। स्वयंशासित जनता का प्रथम कर्त्तव्य और भार तो यही है कि आपस में पहले यह फैसला करले कि प्रजातन्त्र-पद्धति के प्रतिनिधित्व का प्रयोग कैसे किया जाय अर्थात् प्रतिनिधित्व किसको और कितना दिया जाय। दो बार इस परिषद् ने इस काम को हाथ में उठाया और

दोनों ही बार असफलता मिली। मै नही मानता कि आप हमको यह कहेंगे कि आपकी यह असमर्थता सदा बनी रहेगी।

१३—समय तीव्र वेग से दौड़ रहा है और यदि आपने ऐसा समझौता, जो सब दलों को स्वीकार हो और जिसपर आगे कार्य किया जा सके, पेश नही किया, तो हमे शीघ्र ही अपने आगे बढ़ने के प्रयत्न मे रुकना पड़ेगा (और वास्तव मे अभी हम रुक से गये हैं)। ऐसी दशा में सम्राट् की सरकार को विवश होकर एक अस्थाई योजना बनानी होगी, क्योंकि सरकार निश्चय कर चुकी है कि आपकी इस असमर्थता पर भी राजनैतिक उन्नति रुक नहीं सकती। इसका अर्थ यह होगा कि सम्राट् की सरकार आपके लिए केवल प्रतिनिधित्व का प्रश्न ही तय नही करेगी, बल्कि यथाशक्य बुद्धिमानी और निष्पक्षता-पूर्वक यह भी तय करेगी कि विधान मे क्या-क्या नियन्त्रण और सन्तुलन रखने की आवश्यकता है, जिससे अल्पसख्यक जातियों के बहुसख्यक जातियों के, जिनका प्राधान्य प्रजातन्त्र-शासन में होगा, अत्याचारों से रक्षा हो सके। मै आपको आगाह करदू कि विधान का यह भाग, जो आप स्वय निर्धारित नही कर सकते हैं, यदि सरकार आरजी तौर पर भी निर्धारित करेगी, तो चाहे वह कितने ही गम्भीर विचार के साथ अल्पसंख्यक जातियों के रक्षार्थ संरक्षणों का समावेश करे, जिससे किसीको यह शिकायत न हो कि उनकी उपेक्षा हुई है, तब भी वह इस प्रश्न का सन्तोपजनक निपटारा नही होगा। मै आपसे यह भी कहूँगा कि यदि आप इस विषय में किसी निश्चय पर नही पहुंचेगे तो आप निश्चय रखिए कि भारत के विधान पर हमारे समान विचार रखने वाली किसी भी सरकार के कार्य को आप अधिक दुस्तर बनावेगे और वह विधान अन्य राष्ट्रों के विधानों के समान आदरपूर्ण स्थान नहीं पा सकेगा। अतः मैं आपसे एक बार फिर अनुरोध करूंगा कि आप जाकर पुनः इस प्रश्न पर विचार-विनिमय करें और किसी समझौते के साथ हमारे सामने पेश करे।

१४—हमारा इरादा आगे बढ़ने का है। अब हमने अपने कार्य को सिलसिलेवार कुछ विषयों में विभक्त कर लिया है। अब आवश्यकता इस बात की है कि पहले उनपर छोटी समितियां, बहुत बड़ी-बड़ी परिषदें नहीं, गवेषणापूर्वक विचार करें और हमें उचित है कि अब इसी क्रमानुसार कार्य करने के लिए उपाय सोचें। जबतक यह कार्य हो और वे समितियां इसकी रिपोर्ट पेश करें, तबतक हमारी आपकी बातचीत जारी रहनी चाहिए। अतः आपकी सम्मति लेकर मैं चाहता हूँ कि एक प्रतिनिधि-समिति—इस सभा की कार्यकारिणी समिति—नामजद कर दी जाय, जो भारत में ही रहे और जिसका वायसराय के द्वारा हमसे भी सम्बन्ध बना रहे। अभी यह निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता कि वह समिति किस प्रकार कार्य करेगी। यह विषय तो ऐसा है, जिसपर विचार करना होगा और विचार भी तब संभव होगा, जब हमारी प्रस्तावित समितियां अपनी विविध रिपोर्टें पेश करदें। हां, अन्त में हमको एक बार और मिलना होगा, जिससे सब रचनात्मक कार्यों का एक बार सिंहावलोकन हो सके।

१५—हमारा यह विचार है कि परिषद् द्वारा प्रस्तावित ये समितियां शीघ्र बना दी जायं: (क) जो चुनाव-क्षेत्रों और मताधिकार के विषय में जांच और सिफारिश करें; (ख) जो फेडरल फाइनेन्स सब-कमेटी की सिफारिशों की आय-व्यय के आंकड़ों से मिलान कर जांच करें; और (ग) जो कुछ देशी राज्य-विशेषों के विषयों में उत्पन्न हुए आर्थिक प्रश्नों पर गौर से विचार करे। हमारा यह विचार है कि ये समितियां इस देश के प्रमुख सार्वजनिक पुरुषों के अधिनायकत्व में, आगामी नए वर्ष के प्रारम्भ में ही भारत में कार्य करें। संघ-विधान विषयक अन्य अनिश्चित विषयों पर जो सम्मतियां आपने प्रकट की हैं, उनपर हम शीघ्र ही विचार करेंगे और ऐसा उपाय करेंगे जिससे उनके विषय में भी उचित समझौता हो सके।

१६—सम्राट् की सरकार ने संघ-विधायक समिति की रिपोर्ट के

२६वें पैरा में प्रस्तावित राय पर भी, जिससे संघ-धारासभा में राज्यो द्वारा स्वीकृत प्रतिनिधियों की संख्या को प्रत्येक राज्य के प्रतिनिधित्व के विचार से विभाजित करने में आसानी होगी, गौर कर लिया है। मेरे पूर्वकथन से स्पष्ट है कि देशी राजा स्वयं इस बात के इच्छुक हैं कि उनके प्रतिनिधित्व का फैसला यथासंभव शीघ्र ही हो और सम्राट की सरकार की इच्छा है कि उनको इस विषय मे सम्मति के रूप में हर प्रकार की सहायता दी जाय। यदि राजाओ के आपस में इस विषय में उचित निपटारा होने में विलम्ब मालूम हुआ तो सरकार वह उपाय करेगी जिससे उचित निपटारा शीघ्र हो।

१७—दूसरे जिस विषय के बारे में कुछ कहने की आप आशा करेंगे और जो आप बड़ा आवश्यक समझते हैं, उसकी कुछ चर्चा मैं पहले ही कर चुका हूं। जातिगत प्रश्न का ऐसा निपटारा जो केवल धारासभा में जातियों के प्रतिनिधित्व का ही फ़ैसला करे, मेरी राय मे 'नैसर्गिक अधिकार'-प्राप्ति के लिए पर्याप्त नहीं है। विधान में केवल ऐसी बात के समावेश से अल्पसंख्यक जातियां तो उसी अल्पसख्या में ही रहेंगी ; अतः विधान में ऐसी शर्तें अवश्य होनी चाहिएं, जिनमे सब धर्मों और जातियों को यह विश्वास हो कि राष्ट्र में बहुसंख्यक सरकार उनकी नैतिक और आर्थिक उन्नति में बाधा नही पहुंचायगी। सरकार अभी यहां यह नही कह सकती कि वे शर्तें क्या हैं। उनका रूप और विस्तार तो बड़े सोच-विचार के बाद ही निश्चित किया जा सकता है, जिससे एक ओर तो वे अपने तात्पर्य को सिद्ध कर सकें और दूसरी ओर प्रतिनिधित्व-सिद्धान्तवादी उत्तरदायित्वपूर्ण शासन मे भी किसी प्रकार से क्षति न पहुंचे। इस बात के तय करने में सलाहकार-समिति अच्छी सहायता देगी, क्योंकि इस विषय के भी जातिगत मताधिकार विभाजन के समान सबकी राय के साथ तय होने में ही विधान का सफलतापूर्वक संचालन हो सकता है।

१८—अब एक बार फिर हम और आप एक-दूसरे से विदा

होते हैं। हममें से अधिक-से-अधिक आशावादी को जितनी सफलता की आशा थी उसमे अधिक सफलता हमको प्राप्त हुई है। भाषणों में प्रतिनिधिगण के मुख से ऐसे भाव सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई, क्योंकि तथ्य भी यही है। हमारे कार्य में बाधाएं उपस्थित हुई हैं; परन्तु उस आशावादी ने जिसका संसार उन्नति के लिए आभारी है, यह कहा था कि बाधाएं तो दूर करने के लिए होती हैं। इस उपदेश से जो नूतनता और सद्‌भावना की शिक्षा मिलती है, उसीके अनुसार हमें अपने कार्य मे सलग्न रहना चाहिए। ऐसी परिषदों का मेरा विस्तृत अनुभव यही है कि समझौते का रास्ता शुरू में टूटा-फूटा: और बाधापूर्ण होता है, अत: प्रारम्भ मे प्रत्येक को एक प्रकार की निराशा-सी होती है। परन्तु एक समय आता है जब, और अधिकतर अकस्मात् ही, रास्ता साफ हो जाता है और मंज़िले-मक़सूद तक आराम से पहुंच जाते हैं। मेरी यह प्रार्थना ही नही है कि हमारा अनुभव भी यही हो, प्रत्युत मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि सरकार सतत् यही प्रयत्न करेगी कि हमारा और आपका श्रम शीघ्र ही फलदायक हो।